अध्याय १

श्रीगणेशाय नमः ॥ श्रीसरस्वत्यै नमः ॥ श्रीगुरूभ्यो नमः ॥ श्रीसाम्बसदाशिवायनमः ॥ ॐ अस्य श्रीशिवगितामालामन्त्रस्य श्रीवेदव्यासरूप्यगस्त्यऋषिः ॥

जगतीच्छन्दः ॥ श्रीसदाशिवः परमात्मा देवता ॥ प्रणवे बीजम् ॥ सर्वव्यापक इति शक्तिः ॥ ह्री कीलकम् ॥ ब्रह्मात्मसाक्षात्कारार्थे जपे विनियोगः ॥ अथ न्यासः ॥

ॐ श्रीवेदव्यासरूप्यगस्त्यऋषिः शिरसि ॥ ॐ जगतीच्छन्द मुखे ॥ ॐ श्रीसदाशिवः परमात्मादेवता हृदये ॥ ॐ प्रणवे बीजं नाभौ ॥ ॐ सर्वव्यापक इति शक्तिः गुह्ये ॥

ॐ ह्री कीलकं पादयोः ॥ ॐ ह्रां अङ्गुष्ठाभ्यां नमः ॥ ॐ ह्री तर्जनीभ्यां नमः ॥ ॐ ह्रूं मध्यमाभ्यां नमः ॥ ॐ ह्रीं अनामिकाभ्यां नमः ॥ ॐ ह्रौं कनिष्ठिकाभ्यां नमः ॥

ॐ ह्रः करतलकरपृष्ठाभ्या नमः ॥ एवं हृदयादि ॥

दोहा–गौरि गिरीश गणेश रवि, शशि सहसानन राम । सबको वंदन करत हूं, सिद्ध होहि सब काम ॥१॥

सूतजी बोले हे शौनकादिको ! इसके उपरान्त अब मै शुद्ध और कैवल्यमुक्तिदायक संसारके दुःख छुड़ाने में औषधीरूप शिवगीतारत्नको शिवजीके अनुग्रहसे वर्णन करता हूँ ॥१॥

न कर्मो के अनुष्ठान न दान न तप से मनुष्य मुक्ति को प्राप्त होता है किन्तु ज्ञान से ही प्राप्त होता है ॥२॥

आगे शिवजी ने दण्डकवनमें रामचन्द्रको जो शिवगीता उपदेश की है वह गुप्तसे भी गुप्त है ॥३॥

जिसके श्रवण मात्र से ही मनुष्य मुक्ति को प्राप्त होता है जो पूर्वकाल में स्कन्दजीने सनत्कुमार से वर्णन की थी ॥४॥

वह मुनिश्रेष्ठ सनत्कुमार व्यासजीसे कहते हुए व्यासजीने कृपाकरके वह हमसे वर्णन की ॥५॥

और कहा भी था कि, यह तुम गीता किसी को नही देना, हे सूतपुत्र! ऐसा वचन पालन न करने से देव क्षुभित हो शाप देते है ॥६॥

हे ब्राह्मणो! तब मैने भगवान् व्यासजी से पूछा हे भगवन् ! सब देवता क्यो क्षोभ करते और शाप देते है ॥७॥

उनकी इसमें क्या हानि है, जो वे देवता क्रोध करते है । यह सुनकर व्यासजी मुझसे बोले हे वत्स! तू अपने प्रश्न का उत्तर सुन ॥८॥

जो ब्राह्मण नित्य अग्निहोत्र करते और गृहस्थाश्रममें रहते है वही सब फलों के देनेहार देवताओं को कामधेनु है ॥९॥

भक्ष्य, भोज्य, पान करने योग्य, जो कुछ पर्वोमे यज्ञ किया गया है, सो हविद्वारा अग्निमें आहुती दी गई है, वह सब स्वर्ग में मिलती है ॥१०॥

देवताओंको स्वर्गमें इष्टसिद्धि देनेवाला और कुछ नही है जैसे गृहस्थी पुरुषों को दुही गई गाय ले जाने से केवल दुःखही होता है ॥११॥

इसी प्रकार ज्ञानवान ब्राह्मण देवताओंको दुःखदाता ही है कारण कि, वह कर्म नही करता इस कारण इसके विषय भार्या पुत्रादि में प्रवेश करके देवता विघ्न करते हैं ॥१२॥

इससे किसी देहधारीकी शिवमें भक्ति नही होती इस कारण मूर्खोको शिवका प्रसाद नही मिलता ॥१३॥

और जो यथाकथश्चित जानता भी है वह किसी कारण मध्यें ही खंडित हो जाता है और जो किसीको ज्ञान हुआ भी तो वह विश्वास नही भजता ॥१४॥

ऋषय ऊचुः ।

ऋषि बोले जब इस प्रकारसे देवता शरीरधारियों को विघ्न करते है तो फिर इसमें किसका पराक्रम है जो मुक्तिको प्राप्त होता है ॥१५॥

हे सूतपुत्र ! आप सत्य कहिये कि, उनका उपाय है या नही है ॥सूतजी बोले करोड जन्मके पुण्यसंचय होने से शिवमें भक्ति उत्पन्न होती है ॥१६॥

उस भक्ति के होनेसे इष्टपूर्तादि कर्मोकी कामना छोड़कर मनुष्य शिवजीमे अर्पण बुद्धिसे यथाविधि कर्म करता है ॥१७॥

उन शिवजीकी कृपा से जब यह प्राणी दृढ भक्तिमान होता है, तब विघ्न छोड़कर भयभीत हो देवता चले जाते है ॥१८॥

उस भक्तिके करनेसे शिवजीके चरित्र श्रवण करनेकी अभिलाषा उत्पन्न होती है, सुननेसे ज्ञान और ज्ञानसे मुक्ति हो जाती है ॥१९॥

बहुत कहनेसे क्या है, जिसकी शिवजी में दृढ भक्ति है वह करोड़ो पापोसे ग्रसा हो तो भी मुक्त हो जाता है ॥२०॥

अनादरसे, मूर्खतासे, परिहाससे, कपटतासे भी जो मनुष्य शिवभक्तिमें तत्पर है वह अन्त्यज (चांडाल) भी मुक्त हो जाता है ॥२१॥

इस प्रकारसे भक्ति सदा सबके करने योग्य है, इस भक्ति के होतेभी जो मनुष्य संसार से न छूटै ॥२२॥

उस संसारबंधनसे न छूटनेवाले की समान दूसरा कोई भी मूर्ख नही और कुछ शिवजी भक्तिसे ही प्रसन्न नही होते जो नियमसे केवल भक्ति या द्रोहही करते है ॥२३॥

उनपरभी प्रसन्न हो शिव मनवांछित फलप्रदान करते है बडे मोलकी वस्तु कुछ लेकर वा अल्प मोलकी वस्तु अथवा केवल जलही लेकर ॥२४॥

जो नियमसे शिवार्पण करते है, शिवजी प्रसन्न हो उसे त्रैलोक्य देते है, और जो यह न हो सके तो नियम से नमस्कार वा प्रदक्षिणाः ॥२५॥

जो नित्यप्रति शिवजी की करता है, उसके ऊपर भी शिवजी प्रसन्न होते है, और जो प्रदक्षिणा में असमर्थ हो केवल मन में ही शिवजी का ध्यान करै ॥२६॥

चलते बैठते में जो उनका स्मरण करे उसकी भी अभीष्ट पदार्थ प्रदान करते है, चन्दन बेलकाष्ठ तथा वनमें उत्पन्न हुए ॥२७॥

फल जिसके अधिक प्रीति करनेवाले है उस शिवजी की सेवा करनेमें त्रिलोकी में कौन वस्तु दुर्लभ है ? ॥२८॥

वनके उत्पन्न हुए फल मूलादिमें शिवजीकी जैसी प्रीति है वैसी ग्राम नगरके उत्पन्न हुए उत्तम उत्तम फल मूलोंमें नही ॥२९॥

जो ऐसे देवताको छोड़कर अन्य देवताका भजन सेवन करता है, वह मानो गंगा का त्याग करके मृगतृष्णाकी इच्छा करता है ३०॥

परन्तु जिनको करोड़ो जन्मों के पाप चिपट रहे है, उनका चित्त अज्ञान अंधकार से आच्छादित हो रहा है, उनको शिवजी की भक्ति प्रकाशित नही होती ॥३१॥

काल देश स्थल का कुछ नियम नही है जहाँ इसका चित्त रमें वही ध्यान करे ॥३२॥

शिवरूपसे अपने आत्मामें ध्यान करनेसे शिवकी ही मुक्ति को प्राप्त हो जाती है, जिसकी आयु बहुत थोड़ी लक्ष्मी से भी हीन हो और शिवजीकी एक अंशरूपि सार्वभौमपदयुक्त ॥३३॥

'मैं राजा हूं' ऐसे अभिमान से कहनेवाले को वंशसहित संहार करते है । जो सम्पूर्ण लोकका कर्ता तथा अक्षय ऐश्वर्यवान पुरुषभी ॥३४॥

अभिमारहित हो जो 'शिवः शिवोहं' इस प्रकार से कथन करता है उसको शिव आत्मस्वरूपके तादात्म्यभोगी अर्थात् शिवरूपही कर देते है ॥३५॥

हे ऋषियो! जिस व्रतके करने से प्राणीके धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष यह चारों पदार्थो हस्तगत होते है मै वह पाशुपत व्रत तुमसे वर्णन करता हूँ ॥३६॥

विरजानामक दीक्षाको करके विभूति और रुद्राक्षको धारण कर वेदसारनामक शिवसहस्त्रनामको जप करते हुए ॥३७॥

इस मानव शरीरको त्यागकर शैवशरीर को प्राप्त होने पर लोकको कल्याण करनेहारे शंकर प्रसन्न होकर ॥३८॥

तुमको दर्शन देकर कैवल्य मुक्ति देंगे जब रामचन्द्र दण्डकारण्यमें वास करते थे, तब अगस्त्यजीने उन्हे वह उपदेश दिया था ॥३९॥

इति श्रीपद्मपुराणे उपरिभागे शिवगीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे शिवराघवसंवादे शिवभक्त्युत्कर्षनिरूपणं नाम प्रथमोऽध्यायः ॥१॥

वह मैं सब तुमासे कहता हूँ, तुम भक्तियुक्त हो श्रवण करो ॥४०॥

इति श्रीपद्मपुराणे उपरिभागे शिवगीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे अगस्त्यराघवसंवादोपक्रमे भाषाटीकायां

प्रथमोऽध्यायः ॥१॥

अध्याय २

ऋषि बोले।

अगस्त्यजी रामचन्द्रके निकट क्यों आये थे उर किस प्रकार से रामचन्द्रसे विरजा दीक्षा कराई थी इससे रामचंद्रको किस फलकी प्राप्ति हुई सो आप हमसे कहिये ॥१॥

सूत उवाच ।

सूतजी बोले जिस समय जनककुमारी सीताको रावणने हरण किया था तब रामचन्द्रने वियोगके कारण बहुत विलाप किया ॥२॥

निद्रा देहाभिमान और भोजन त्यागकर रातदिन शोक करते भाईसहित रामचन्द्रने प्राण त्याग करनेकी इच्छा की ॥३॥

अगस्त्यजी यह बात जानकर रामचंद्रजी के समीप आये और मुनिने रामचन्द्रको संसारकी असारता समझाई ॥४॥

अगस्त्य उवाच ।

अगस्त्यजी बोले- हे राजेन्द्र! यह क्या विषाद करते हो, स्त्री किसकी इसका विचार तो करो पृथ्वी, आप, तेज, वायु और आकाश इन पांच महाभूतों का बना हुआ यह देह जड है इसको ज्ञान नही होता ॥५॥

और आत्मा तो निर्लेप सर्वत्र परिपूर्ण सच्चिदानन्दस्वरूप है आत्मा न कभी उत्पन्न होता न मरता दुःख भोगता है ॥६॥

जिस प्रकार यह सूर्य संपूर्ण संसारके चक्षुरूप से स्थित है और चक्षुओंके दोषसे कभी लिप्त नही होता ॥७॥

इसी प्रकार सम्पूर्ण भूतों का आत्माभी दुःखमें लिप्त नही होता और यह देहभी मलका पिंड तथा जड है यह जीव कलारहित होने से जड है ॥८॥

यह काष्ठ अग्निके संयोगसे भस्म हो जाता है, सियार आदि इसको खाजाते है, तौ भी नही जानता कि उसके वियोग में क्या दुःख होता है ॥९॥

जिसका सुवर्णके समान गौरवर्ण, अथवा दूर्वादलके समान श्याम स्वरूप है, कुचकलश जिसके उन्नत है, मध्यभाग सूक्ष्म है ॥१०॥

बडे नितम्ब और जांघोवाली चरणतल जिसका कमलके सदृश रक्तवर्ण है जिसका मुख पूर्णिमाके चन्द्रमाके समान है और पके बिम्बा फलके समान जिसके अधरोष्ठ है ॥११॥

नील कमलकी समान जिसके विशाल नेत्र है, मत्त कोकिलाकी समान जिसके वचन और मत्त हाथीकी समान जिसकी चाल है ॥१२॥

ऐसी स्त्री कामदेवकि बाणकी समान कटाक्षोंस मेरे ऊपर कृपा करती है इस प्रकारसे जो मूर्ख मानता है वही कामका शिष्य है ॥१३॥

हे राजन! सावधान होकर सुनो मैं इसका विवेक कथन करता हुं यह जीव स्त्री पुरुष या नपुंसक नही है ॥१४॥

यह देही मूर्तिरहित सब देहों में स्थित रूपरहित सर्वव्यापी सबका साक्षी देहमें स्थित हो प्राणीको सजीव करनेवाला है जिसको सूक्ष्मांगी सुकुमार बाला कहते है वह एक मलका पिंड और जडस्वरूप है ॥१५॥

वह न कुछ देखती न सुनती न सूंघती है जिसका शरीर चर्ममात्रका है हे रामचंद्र ! बुद्धिसे विचारो और छोडो ॥१६॥

जो प्राणोंसे भी अधिक प्यारी है वही सीता तुम्हारे दुःखका कारण होगी । पंच महाभूतोंसे उत्पन्न होनेके कारण पांचभौतिक देह उत्पन्न होते है ॥१७॥

परन्तु उन सबमें आत्मा एक परिपूर्ण सनातन है इस विचार से कौन स्त्री कौन पुरुष सब ही सहोदर है ॥१८॥

जिस प्रकार अनेक गृह निर्माण करनेमें आकाश अबच्छिन्नताको प्राप्त होता है अर्थात उन सबमें मिल जाता है पश्चात

उन घरों के जल जानेपर कुछ हानि को भी प्राप्त नही होता ॥१९॥

इसी प्रकार देहोंमें आत्मा परिपूर्ण और सनातन है देहसम्बन्धसे अनेक प्रकारका प्रतीत होता है परन्तु उनके नाश होने पर आत्मा नष्ट नही होता, वह एकरूप है ॥२०॥

जो मारनेवाला जानता है मैने मारा जो मरनेवाला जानता है मै मरा यह दोनों न जानने से मूर्ख है, कारण कि न यह मारता है और न वह मारा जाता है ॥२१॥

हे राम! इस कारण अतिदुःख करनेसे खेदका कारण क्या है अपना स्वरूप इस प्रकार जानकर दुःखको त्याग कर सुखी हो ॥२२॥

श्रीरामचंद्र बोले हे मुने! जब देहको भी दुःख नही होता और परमात्मा को भी दुःख नही होता है, तो सीताके वियोग की अग्नि मुझे कैसे भस्म करती है ॥२३॥

जो वस्तु सदा अनुभव करी जाती है तुम कहते हो कि वह नही है । हे मुनिश्रेष्ठ! फिर इस बातमें मुझे कैसा विश्वास हो ॥२४॥

जब सुख दुःखको भोक्ता जीव नही है, तौ कौन है? जिसके द्वारा प्राणी दुःखी होता है, सुखदुःख को भोक्ता कौन है हे मुनिश्रेष्ठ! कहिये ॥२५॥

अगस्त्य उवाच ।

अगस्त्यजी बोले शिवजी की माया कठिनतासे जानने योग्य है । जिसने जगत को मोह लिया है उस मायाको तो प्रकृति जानो और मायावाला महेश्वरको जानो ॥२६॥

उसीके अवयवरूप जीवोंसे सम्पूर्ण जगत व्याप्त है, वह महेश्वर सत्यस्वरूप ज्ञानस्वरूप अनन्त और सर्वव्यापी है ॥२७॥

उसीका वंश जीवलोकमें सब प्राणियों के हृदयमें स्थित हुआ है जिस प्रकार से काष्ठ के योगसे अग्निमें स्फुल्लिंग उठते है इसी प्रकार जीवभी ऐसा परमात्मासे होता है ॥२८॥

यह ईश्वरांश जीव अनादिकालके कर्मबंधनपाशमें बंधे है यह अनादि वासनाओंसे युक्त है और क्षेत्रज्ञ कहलाते है ॥२९॥

मन बुद्धि चित अहंकार यह चारों अन्तःकरण के ही भेद है । इस अन्तःकरण चतुष्टयमें क्षेत्रज्ञों का प्रतिबिम्ब पडता है ॥३०॥

वही जीवपनको प्राप्त होकर कर्मफलके भोक्ता हुए है, वही जीव कर्म भोगने के स्थान देहों को प्राप्त होकर विषय सेवन करने से सुख वा दुःख भोग करते है ॥३१॥

स्थावर जंगमके भेद से दो प्रकार का शरीर कहा जाता है ॥३२॥

वृक्ष, लता, गुल्म, यह स्थावर सूक्ष्म देह कहलाते है, और अण्डज, पक्षी, सर्प इत्यादि, स्वेदज, कृमि, मशकादि, जरायुज, मनुष्य गौ आदि, यह जंगम शरीर कहलाते है ॥३३॥

कितने एक प्राणी शरीर धार के निमित्त कर्मानुसार योनियों में प्रवेश करते है और दूसरे वृक्षों का आश्रय करते है ॥३४॥

जब यह जीव विषयोंमें लिप्त होता है तब मैं सुखी हूं दुःखी हूं ऐसा मानता है, यद्यपि यह निर्लेप ज्योतिःस्वरूप है परन्तु शिवजीकी माया से मोहित सुख दुःखका अभिमानी होती है ॥३५॥

काम, क्रोध, लोभ,मद, मात्सर्य और मोह यह छः महाशत्रु अहंकार से उत्पन्न होते है ॥३६॥

यही अहंकार स्वप्न और जाग्रत अवस्था में जीवको दुःख देता है और सुषुप्तिमें सूक्ष्मरूप के होने और अहंकार के अभाव से यह जीव शंकरता (आनन्दरूप) को प्राप्त होता है ॥३७॥

इस प्रकार यह माया में मिलने से सुख दुःखका कारण उत्पन्न करता है जिस प्रकार सूर्य की किरणों के पडने से सीपी में चांदी भासती है इसी प्रकार शिवस्वरूप में माया से विश्व दीखता है ॥३८॥

इस कारण तत्त्वज्ञानसे तो कोई भी दुःखभागी नही है । इससे हे राम! तुम दुःखको त्याग वृथा क्यो दुःखी होते हो? ॥ ३९॥

श्रीराम उवाच ।

श्रीरामचंद्र बोले, हे मुनिराज! जो तुमने मेरे सन्मुख कहा है, यह सब सत्य है तथापि भयंकर प्रारब्धदैवका दुःख मुझे नही छोड़ता है ॥४०॥

जिस प्रकार मद्य प्राणीको मत्त कर देता है इसी प्रकार अज्ञानहीन तत्त्वज्ञानयुक्त ब्राह्मणको भी प्रारब्धकर्म नही छोड़ता ॥४१॥

बहुत कहने से क्या है यह काम प्रारब्ध का मन्त्री है, यह मुझको दिनरात पीड़ा देता है और इसी प्रकारसे अहंकार भी दुःख देता है ॥४२॥

इति श्रीपद्मपुराणे उपरिभागे शिवगीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे अगस्त्यराघवसंवादे वैराग्योपदेशोनाम द्वितीयोऽध्यायः ॥२॥

जीव अत्यन्त पीडित होकर स्थूल देह को त्याग करता है । इस कारण हे ब्राह्मण! मेरे जीवन के निमित्त उपाय करो ॥४३॥

इति श्रीप० शिवगीतासू० ब्रहवि० यो० अगस्त्यराघवसंवादे भाषाटीकायां वैराग्योपदेशो नाम द्वितीयोऽध्यायः ॥२॥

अध्याय ३

अगस्त्यजी बोले कामक्रोधादिसे पीडित हो मनुष्य हितकारी वचन नही सुनता, उसको हितकारी वचन ऐसे अच्छे नही लगते जैसे मरणशीलको औषधि अच्छी नही लगती ॥१॥

जिस सीता को मायावी दैत्य सागरके बीचमें ले गया है, हे राम! वह तुम्हारे निकट अब किस प्रकारसे आ सकती है ॥२॥

जिसके द्वारपर वानरोंके यूथोंके समान सब देवता बांध लिये गये है । देवताओंकी स्त्री जिसके यहां चमर ढोरती है ॥३॥

जो शिवजी के वर से गर्वित हो सम्पूर्ण त्रिलोकी को भोगता है और भय से रहित है उसे तुम कैसे जीतोगे ॥४॥

इन्द्रजित भी उसका पुत्र शिव के वरदान से गर्वित है उसके आगे से देवता संग्राम में बहुतबार भाग गये है ॥५॥

देवताओं को भय देनेवाला जिसका भाई कुम्भकर्ण बड़ा भयंकर है और अनेक प्रकार दिव्यास्त्र धारण करनेवाला चिरंजीवी विभीषण है ॥६॥

देव और दानवोंको दुर्गम जिसका लंकानाम दुर्ग है, और करोड़ो जिसके यहां चतुरंगिणी सेना है ॥७॥

हे राजन्! फिर अकेले तुम उसे कैसे जीतोगे, तुम्हारी यह बात ऐसी है, कि जैसे कोई बालक चन्द्रमाको हाथसे लेना चाहे इसी प्रकार तुम काम से मोहित होकर उसके जीतने की इच्छा करते हो ॥८॥

श्रीरामचन्द्रजी बोले हे मुनिश्रेष्ठ! मै क्षत्रिय हूं और मेरी भार्या राक्षसने हरण कर ली है, जो मै उसे न मारूंगा तौ मेरे जीने से क्या फल है ॥९॥

इस कारण तुम्हारे तत्वबोधसे मुझे कुछभी प्रयोजन नही है, यह कामक्रोधादिक मेरे शरीरको भस्म किये डालते है ॥१०॥

और अपनी प्रियाके हरण होने और शत्रुसे पराभव होनेसे अहंकारभी नित्य और मेरे जीवनको हरण करनेको उद्यत है ॥११॥

हे मुनिश्रेष्ठ! जिसको तत्वज्ञान की इच्छा हो वह लोकके पुरुषों में नीच है । इस कारण सागर लंघकर युद्धमे उसके मारने के उपायको आप कहिये आपसे श्रेष्ठ और कोई मेरा गुरु नही ॥१२॥

अगस्त्य उवाच ॥

अगस्त्यजी बोले । जो ऐसी इच्छा है, तो पार्वतीके पति शिव अविनाशी की शरण में जाओ, वह भगवान प्रसन्न होकर तुमको मन वांछित फल देंगे ॥१३॥

इन्द्रादि देवता हरि और ब्रह्माभी जिसको नही जीतसके वह शिवजीके अनुग्रह बिना तुमसे कैसा मारा जायगा ॥१४॥

इस कारण विरजामार्गसे मै तुमको दीक्षा देता हूँ इस मार्ग से तुम मनुष्यपन छोड़कर तेजोमय हो जाओगे ॥१५॥

जिसके प्रतापसे युद्धमे शत्रुओंको मारकर सम्पूर्ण कामनाओंको प्राप्त हो जाओगे और सम्पूर्ण धरामंडलको भोगकर अन्तमें शिवलोकको जाओगे ॥१६॥

सूत उवाच ।

सूतजी बोले, तब रामचन्द्रजी मुनिश्रेष्ठको दंडवत प्रणाम करके दुःख त्याग प्रसन्नमन हो बोले ॥१७॥

श्रीराम उवाच ।

श्रीरामचन्द्रजी बोले - हे मुने ! मै कृतार्थ हो गया, मेरे कार्य सिद्ध होगये जब समुद्र पीनेवाले आप मेरे ऊपर प्रसन्न हो तो मुझे क्या दुर्लभ है । इस कारण हे मुनिश्रेष्थ! आप मुझसे विरजादीक्षाकी विधि कहिये ॥१८॥

अगस्त्य उवाच ।

अगस्त्यजी बोले, शुक्लपक्षकी चौदस अष्टमी वा एकादशी सोमवार अथवा आर्द्रा नक्षत्रमें यह कार्य आरंभ करना ॥१९॥

जिनको वायुश्रेष्ठ, रुद्र, अग्नि, परमेश्वर, निरंतर जगत के नियंता सर्वश्रेष्ठ ब्रह्मादिकोंसे भी परे शिव कहते है ॥ २०॥

जो ब्रह्मा, विष्णु, अग्नि, वायु इनके भी उत्पन्न करनेवाले है इस प्रकार सदाशिवका ध्यान करके, अग्निबीजसे गृहाग्निका ध्यान कर देह उत्पत्तिके कारणभूत, जो पंचमहाभूत है, वह वायुबीजसे पृथक है, इस प्रकार भावना करके ॥२१॥

उन महाभूतों के गुणका क्रमसे ध्यान करे कि, गृहाग्निसे दग्ध होनेवाली भावना करावै, उसका प्रकार-मात्रा अर्थात पंच महाभूतोंके गुण- रूप, रस, गन्ध, स्पर्श, और शब्द यह पांच है पृथ्वीमेम पांचही गुण रहते है, जलमें शब्द, स्पर्श, रूप, रस यह चार तेज में शब्द, स्पर्श, रूप यह तीन, वायु मे शब्द और स्पर्श यह दो और आकाश मे शब्द यह एक ही गुण है । इसकी उत्पत्ति का क्रम आकाशसे वायु, वायुसे तेज, तेजसे जल, जलसे पृथ्वी उत्पन्न होती है और इससे विपरीत अर्थात् पृथ्वी जलमे, जल तेजमें, तेज वायुमें, वायु आकाशमें लय हो जाता है अधिक अधिक गुण के भूत न्यून न्यून गुणवाले भूतों मे लय हो जाते है, और इन सबकी अमात्रा जिसका गुण नही, उन अहंकारादिकोंको लय करै अर्थात् पंचमहाभूतोंका अहंकारमें, अहंकारका महतत्त्वमें, महतत्त्वका मायामें, मायाका सबके आधारभूत, परमात्मामें लय करे फिर अमृतबीजसे लयके विपरीत क्रम करके यह देहोत्पति विषयमें प्रवृत्त है ऐसी भावना करके मै दिव्यदेह हू और पूर्वदेहके उत्पन्न करने हारे सब गुण और द्रव्यका अग्निबीजसे दाह करके उसका परमात्मा मे लयकरके अमृतबीजसे पुनरुज्जीवन करके यह देह अमृत और दिव्य है, ऐसी भावना करै । इस प्रकार भूतशुद्धि करके पाशुपतव्रतका आरंभ करै ॥२२॥२३॥

फिर प्रातःकालही मै पाशुपतव्रतको करूंगा ऐसा संक्षेपसे संकल्प करके अपनी शाखा तथा गृह्यसूत्र से अग्नि स्थापन करे ॥२४॥

उसी दिन व्रत रखकर पवित्र हो श्वेतवस्त्र धारण करे शुक्ल यज्ञोपवीत और शुक्लमाला पहरे ॥२५॥

अन्तःकरण एकाग्र कर (प्राणापानव्यानोदानसमाना मे शुद्ध्यन्ताम् तथा (ज्योतिरहं विरजा विपाप्मा भूयासं स्वाहा) इत्यादि विराजामंत्रके अनुवाकपर्यन्त समिधा आज्य और चरुसे हवन करै ॥२६॥

हवनके अनन्तर (यातेअग्नियज्ञियातनूः) इस मंत्रसे अग्नि कोआत्मामें आरोपण करके अग्निके भस्मको (अग्निरिति भस्म इत्यादि) मंत्रोसे अभिमंत्रित कर ललाटादि अंगोमें धारण करे ॥२७॥

जिस ब्राह्मणके शरीरमें भस्म लगी होती है । वह महापतकोसे भी छूट जाता है इसमें संदेह नही ॥२८॥

जिस कारणसे कि, भस्म अग्नि का वीर्य है, मै भी अग्निवीर्यके धारण करनेसे बलवान हो जाऊंगा ॥ इस प्रकार जो नित्य भस्म स्नान करता तथा जितेन्द्रिय हो, भस्मपर शयन करता है ॥२९॥

वह सब पाप से मुक्त होकर शिवलोकको प्राप्त होता है, हे राजन ! तुम इस प्रकार करो और शिवसहस्त्रनाम मै तुमको देता हूं इससे तुम्हारे सब मनोरथ पूर्ण होंगे ॥३०॥

सूत उवाच ।

सूतजी बोले, ऐसा कहकर अगस्त्यजीने रामचन्द्रका शिवसहस्त्रनामका उपदेश किया ॥३१॥

जो कि सब वेदोंको सार है, जो शिवजीका प्रत्यक्ष करनेवाला है उसको देकर अगस्त्यजी ने कहा हे राम! तुम इसे दिनरात जपो ॥३२॥

तब भगवान शिवजी प्रसन्न होकर पाशुपत अस्त्र तुमको देंगे, जिससे तुम शत्रुओं को मारकर प्रियाको प्राप्त होगे ॥३३॥

उसी अस्त्र के प्रभावसे सागर को शोष सकोगे संहार कालमें शिवजी इसी ही अस्त्र से जगतको संहार करते है ॥३४॥

इति श्रीपद्मपुराणे शिवगितासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे अगस्त्यराघवसंवादे विरजादीक्षा निरुपणं नाम

तृतीयोऽध्यायः ॥३॥

उसके बिना पाये दानवोंसे जय पाना बडा दुर्लभ है । इस कारण इस अस्त्रके पानेके निमित्त शिवजीकी शरण जाओ ॥३५॥

इति श्रीपद्मपुराणे० अगस्त्यराघवसंवादे शिवगीताभाषाटीकायां तृतीयोध्याः ॥३॥

अध्याय ४

सूतजी बोले - अगस्त्यजी जब ऐसा कहकर आश्रम को चले गये तब रामगिरिके ऊपर गोदावरीके पवित्र आश्रममें रामचन्द्र ॥१॥

शिवलिंग का स्थापन कर अगस्त्यजीके उपदेशानुसार विरजादीक्षा ले सर्वांग में विभूति लगाय रुद्राक्ष के आभरण पहर ॥२॥

शिवलिंगको गोदावरीके पवित्र जलोंसे अभिषेकित कर वन के उत्पन्न हुए फुलों और फूलों से उनका पूजन कर ॥३॥

भस्म लगाये भस्मपरही शयन करते व्याघ्रचर्म के आसनपर बैठे रातदिन अनन्य बुद्धिकर शिवसहस्त्रनाम जपने लगे ॥४॥

एक महीने तक फलाहार, एक महीने तक पात्तों का भोजन, एक महीना जलपान और एक महीना पवन को आहार करे ॥५॥

शान्त अन्तःकरण, इन्द्रियोंको जीते, प्रसन्न मन, महेश्वर का ध्यान किये, हृदयकमलमें विराजमान, अर्द्धांग में पार्वतीको धारण किये ॥६॥

चार भुजा तीन नेत्र बिजली के समान पीली जटा धारे करोड़ो सूर्यके समान प्रकाशमान कोटि चन्द्रमाके समान शीतल ॥७॥

सम्पूर्ण गहने पहरे सर्पोका यज्ञोपवीत व्याघ्रचर्म ओढे भक्तों के अभयदाता वरदायक मुद्रा धारे ॥८॥

व्याघ्रचर्मका ही उत्तरीय (दुपट्टा) ओढे, देवता और असुरोंसे नमस्कार पाये, पंचमुख चन्द्रमा मस्तकपर धारे, त्रिशूल और डमरू लिये ॥९॥

नित्य अविनाशी शुद्ध अक्षय निर्विकार एकरूप, शिवजीका इस प्रकार नित्य ध्यान करते चार महीने बीत गये ॥१०॥

तब प्रलयकालिक समुद्रके समान भयंकर शब्द प्रगट हुआ, जिस प्रकारसे समुद्र मंथनके समय मंदराचलके बिलोनेसे ध्वनि उठी थी ॥११॥

त्रिपुरासुरके जलानेके समय शिवजीके बाणकि अग्निके समान भयंकर महाशब्द सुनकर रामचंद्र चकित हो जबतक गोदावरीके तटोंकी ओर दृष्टि करते है ॥१२॥

तबतक भयंकर महातेजःपुञ्जं विप्र रामचन्द्रके आगे उपस्थित हुआ, उसी तेजसे चकित हो रामचंद्रको दशोंदिशा न सूझी ॥१३॥

हे द्विजश्रेष्ठ! आँखे मिच जानेसे राजकुमार मोहको प्राप्त हो गये और विचार करके जाना कि यह दैत्योंकी माया है ॥१४॥

फिर वह महावीर उठकर और अपने बडे धनुष्यको चढाकर तथा दिव्य मन्त्रोंसे अभिमन्त्रितकर तीक्ष्ण बाणोंपर दृष्टि करने लगे ॥१५॥

आग्नेयास्त्र, वरुणास्त्र, सोमास्त्र, मोहनास्त्र, सूर्यास्त्र, पर्वतास्त्र, सुदर्शनास्त्र, महाचक्र, कालचक्र, वैष्णवास्त्र ॥१६॥

रुद्रास्त्र, पाशुपतास्त्र, ब्रह्मास्त्र, कुबेरास्त्र, वज्रास्त्र, वायवास्त्र और परशुरामास्त्र इत्यादि अनेक मन्त्रोंका रामने प्रयोग किया ॥१७॥

परत्नु उस महातेजमें वे रामचन्द्रके अस्त्र और शस्त्र इस प्रकार लीन हो गये जैसे समुद्रमें पत्थर और ओले मग्न हो

जाते है ॥१८॥

तब एक क्षणमात्रमें धनुष जलकर रामचन्द्रके हाथसे गिरा फिर तरकस अंगुलित्राण (जो अंगुलियोंमें पहनते है) गोधा जो प्रत्यञ्चाके आघातसें रक्षा करता है (यह चर्मके बने होते है) जलकर गिर पडे ॥१९॥

यह देखकर लक्ष्मण भयभीत और मूर्छित हो पृथ्वीमें गिरे और रामचन्द्र भी निस्तब्ध हो केवल घुटनेसे पृथ्वी में बैठ गये ॥२०॥

और आँखे मीचे भयभीत हो शंकरकी शरण को प्राप्त हुए और ऊँचे स्वरसे शिवसहस्त्रनामका जप करने लगे ॥२१॥

और शिवजीको पृथ्वीमें दण्डप्रणाम बारम्बार किया, फिरभी प्रथमकी समान दिङ्मण्डलको शब्दायमान करनेवाला शब्द हुआ ॥२२॥

उस घोर शब्दसे पृथ्वी चलायमान और पर्वत कंपित हुए तब फिर क्षणमात्रमें वह तेज चंद्रमाके समान शीतल हुआ ॥२३॥

जितनेमें रामचंद्र नेत्र खोलकर देखते है तब तक ही उन्होने संपूर्ण भूषण धारण किये वृषभ का दर्शन किया ॥२४॥

जिसका रंग अमृतके मंथनेसे उत्पन्न हुए मक्खनके पिंडकी नाई श्वेत है, जिसके श्रृंगाग्रमें सुवर्णमें बंधी मरकत मणि शोभित होती है ॥२५॥

नीलमणिके समान नेत्र ह्रस्वकण्ठसाम्रासे भूषित रत्नोंकी खोगीर से शोभित जो कि श्वेत चामरों से युक्त है ॥२६॥

घरघर शब्दवाली घंटिकाओंसे दशों दिशाओंको पूर्ण करते हुए वृषभपर चढे स्फटिक मणि के समान शुभ्रकांति महादेवजी ॥२७॥

जो कि, करोडों सुर्यकी समान प्रकाशमान, करोडों चन्द्रमाओंके समान शीतल, व्याघ्र चर्मका वस्त्रधारे, नागोंका यज्ञोपवीत पहरे ॥२८॥

सम्पूर्ण अलंकारोंसे युक्त, बिजलीकी समान पीली जटा धारे, नीलकण्ठ, व्याघ्रका चर्म ओढे, चन्द्रमा मस्तकपर विराजमान ॥२९॥

अनेक प्रकारके शस्त्रोंसे युक्त, दश बाहु, तीन नेत्र, युवावस्था पुरुषोंमें श्रेष्ठ, सच्चिदानन्दस्वरूप ॥३०॥

तथा निकट बैठी हुई पूर्ण चन्द्रमुखी, नीलकमल के समान अथवा मरकत मणिके समान सुन्दर शरीरवाली ॥३१॥

मोतियोंके आभरणोंसे युक्त, तारोंसे युक्त रात्रिकी, समान शोभित तथा विन्ध्यपर्वतकी समान ऊँचे स्तनभार से नम्र ॥ ३२॥

है वा नहीं ऐसे संदिग्ध मध्यभाग में सुन्दर है वस्त्र जिसका और दिव्य आभूषणोंसे युक्त कस्तूरी आदि दिव्य सुगन्ध लगाये ॥३३॥

दिव्य माला धारे, नील कमलके समान नेत्र, टेढे केशोंसे शोभित मुखमें ताम्बूल खाने से शोभित अधरोष्ठवाली ॥३४॥

शिवजीके आलिंगनसे उत्पन्न हुए रोमांच शरीरवाली सच्चिदानन्द रूप त्रिलोकीकी माता ॥३५॥

सब सुन्दर पदार्थोंके सारकी मूर्तिमान पात्र पार्वतीको रामचन्द्रने देखा । इसी प्रकार अपने २ वाहनपर चढे आयुध हाथमें लिये ॥३६॥

बृहद्रथन्तरादि सामगायन करते अपनी २ स्त्रियोंसे युक्त इन्द्रादि दिक्पालोंसे सेवित ॥३७॥

और सबसे आगे गरुडपर चढे, शंख, चक्र, गदा और पद्म धारे, नील मेघके समान शरीरधारी, बिजलीके समान कान्तिमान, लक्ष्मीसे युक्त ॥३८॥

एकाग्र चित्तसे रुद्राध्यायका पाठ करते हुए जनार्दन और पीछे हंसपर चढे हुए चतुर्मुख ब्रह्माजी ॥३९॥

चारो मुखों से ऋक यजुः साम और अथर्व इन चारो वेद तथा रुद्रसूक्तका जप करते बड़ी दाढी और जटा धारण किये सरस्वती सहित महेश्वरकी स्तुति करते ॥४०॥

इसी प्रकार अथर्वशीर्ष के मंत्रो से स्तुति करते हुए मुनिमन्डल और गंगादि नदियोंसे युक्त नीलवर्ण सागर ॥४१॥

श्वेताश्वतर के मंत्रोसे शिवजीको स्तुति करते कैलास पर्वतके समान अनन्तादि महानाग ॥४२॥

रत्नोंसे विभूषित कैवल्य उपनिषद् पाठ करनेहारे स्तुति कर रहे है और सुवर्णकी छड़ी हाथमें लिये नंदीके आगे स्थित हुए ॥४३॥

दक्षिणकी ओर पर्वतके समान मुषकपर चढे गणेशजी और उत्तरकी ओर मयूर पर चढ़े कार्तिकेय ॥४४॥

महाकाल और चण्डेश्वर पार्षदगण सेनानायक भयंकर मूर्ति धारे इधर उधर स्थित दावाग्नि की समान दीप्तिमान दुर स्थित कालाग्नि रुद्र ॥४५॥

तीन चरण है जिसके और कुटिल मूर्तिवाले प्रमथ गण तथा उनके अग्रभागमें नृत्य करनेवाले भृंगिरिटि ऐसे अनेक मूर्तिवाले करोडों प्रमथगण ॥४६॥

और अनेक प्रकारके वाहनोंपर स्थित चारो ओर मातृमण्डल और पञ्चाक्षरी विद्या जपनेमें तत्पर सिद्ध विद्याधरादिक ॥ ४७॥

और दिव्य रुद्रके गीत गाते हुए किन्नरोंके समूह और (त्र्यम्बक यजामहे) इस मंत्र को जपनेहारे ब्राह्मणोंके समूह ॥ ४८॥

आकाशमें वीणा बजाकर गाते और नाचते हुए नारद और नाट्यकी विधिसे नृत्य करते हुए रम्भादिक अप्सराओंके झुण्ड ॥४९॥

और गानेमें तत्पर चित्ररथदि गन्धर्वोके समूह तथा शिवजीके कानोमें कुण्डलताको प्राप्त हुए कम्बल और अश्वतर नाग ॥५०॥

तथा गीत गानेमें तत्पर कम्बल और अश्वतरनागोंसे शोभित सब देवसभाको देखकर रामचन्द्र कृतार्थ हुए ॥५१॥

और हर्षसे गद्गदकण्ठ हो शिवजी की स्तुति और दिव्य सहस्त्रनामके उच्चारणसे बारंबार प्रणाम करने लगे ॥५२॥

इति श्रीपद्मपुराणान्तर्गतशिवगीतायां भाषाटीकायां शिवप्रादुर्भावो नाम चतुर्थोऽध्यायः ॥४॥

अध्याय ५

श्रीसूतजी बोले-इसके उपरान्त उस स्थानमें एक सुवर्णका बड़ा रथ प्रादुर्भूत हुआ जिसकी अनेक रत्नोंकी कान्तिसे सब दिशा चित्र विचित्र हो गई थी ॥१॥

नदी के किनारेकी पंकमें जिसके चारो चक्र स्थित थे, मोतियोंकी झालर और सैकड़ो श्वेत छत्रसे युक्त ॥२॥

सुवर्णके खुरमढे हुए चार घोडोंसे शोभित मोतियोंकी झालर और चंदोवेसे शोभायमान जिसकी ध्वजामें वृषभका चिह्न था ॥३॥

जिसके निकट एक मत्त हस्तिनी चलती थी, जिसपर रेशमकी गद्दियाँ बिछाई थी, पांच भूतोंके अधिष्ठातृ देवताओंसे शोभित पारिजात कल्पवृक्षके फूलोंकी मालाओंसे सज्जित ॥४॥

मृगनाभिसे उत्पन्न हुई कस्तूरीके मदवाला कपूर और अगर धूप की उठी हुई गन्धसे भौरों को आकर्षण करनेवाला ॥५॥

प्रलयकालके समान शब्दायमान अनेक प्रकार के बाजोंसे युक्त वीणावेणु मधुर बाजे और किन्नरो गणों से युक्त ॥६॥

इस प्रकारके श्रेष्ठरथको देखकर वृषभसे उतर शिवजी पार्वती सहित वस्त्रकी शय्यावाले उस रथके स्थानमें प्रविष्टित हुए ॥७॥

उसमें देवांगना श्वेत चमर और व्यजनके चलानेसे शिवजीको प्रसन्न करने लगी ॥८॥

शब्दायमान कंकणोकी ध्वनि और निर्मल मंजीरीके शब्द वीणावेणु के गीतसे मानों त्रिलोक पूर्ण हो गया ॥९॥

तोतोंके वाक्यकी मधुरता और श्वेत कबूतरोंके शब्दसे जगत शब्दायमान हो गया, प्रसन्नतासे अपने फण उठाये हुए शिवजीके भूषणरूप शरीरमें लिपटे सर्पोको देखकर करोड़ो मयूर प्रसन्न हो अपनी चन्द्रका दिखाते हुए नृत्य करने लगे ॥ १०॥

तब शिवजी प्रणाम करते हुए रामको उठाकर प्रसन्न मनसे दिव्य रथमें ले आये ॥११॥

और अपने दिव्य कमण्डलुके जलसे सावधान हो आचमनकर रामचन्द्रको आचमन कराय अपनी गोदमें बैठाया ॥१२॥

इसके उपरान्त रामचन्द्रको दिव्य धनुष, अक्षय तरकस और महापाशुपतास्त्र प्रदान किया ॥१३॥

और रामचन्द्रसे बोले, हे राम! यह मेरा उग्र अस्त्र जगत्का नाश करनेवाला है ॥१४॥

इस कारण सामान्य युद्धमें इसका प्रयोग नही करना । इसका निवारण करनेवाला त्रिलोकीमें दूसरा नही है ॥१५॥

इस कारण हे राम! प्राणसंकट उपस्थित होनेपर इसका प्रयोग करना उचित है, दूसरे समयमें इसका प्रयोग करनेसे जगतका नाश हो जाता है ॥१६॥

फिर शिवजी देवताओंमें श्रेष्ठ लोकपालों को बुला प्रसन्न मन हो बोले, रामचन्द्रको सब कोई अपने २ अस्त्रप्रदान करो ॥१७॥

यह रामचन्द्र उन अस्त्रोंसे रावणको मारेंगे कारण कि, उसको मैने वर दिया है कि, तू देवताओं से न मरेगा ॥१८॥

इस कारण तुम सब युद्धमें भयंकर कर्म करनेवाले वानरों का शरीर धारण करके इनकी सहायता करो इससे तुम सुखी होगे ॥१९॥

शिवजीकी आज्ञा को शिरपर धर प्रणामकर हाथ जोड देवताओंने शिवजीके चरणों में प्रणाम कर अपने २ अस्त्र दिये ॥२०॥

विष्णुने नारायणास्त्र, इन्द्रने ऐन्द्रास्त्र, ब्रह्माने ब्रह्मदण्डास्त्र, अग्निने आग्नेयास्त्र दिया ॥२१॥

यमराजने याम्यास्त्र, निऋतिने मोहनास्त्र, वरुणने वरुनास्त्र, वायुने वायव्यास्त्र ॥२२॥

कुबेरन सौम्यास्त्र, ईशानने रुद्रास्त्र, सूर्यने सौरास्त्र, चन्द्रमाने सौम्यास्त्र, विश्वेदेवाने पार्वतास्त्र, आठों, वसुओंने वासवास्त्र प्रदान किया ॥२३॥

तब दशरथकुमार रामचन्द्र प्रसन्न हो शिवजीको प्रणाम कर हाथ जोड़ खडे हो भक्तिपूर्वक बोले ॥२४॥

श्रीराम उवाच ।

श्रीरामचन्द्र बोले, हे भगवन् ! मनुष्यों से तो क्षारसमुद्र उल्लंघन नही किया जायेगा और लंकादुर्ग देवता तथा दानवों को भी दुर्गम है ॥२५॥

और वहां करोड़ो बली राक्षस रहते है वे सब जितेन्द्रिय वेदपाठ करने में तत्पर और आपके भक्त है ॥२६॥

अनेक प्रकारकी मायाके जानने हारे बुद्धिमान अग्निहोत्री है । केवल मै और भ्राता लक्ष्मण युद्धमें उनको कैसे जीतसकेंगे ॥२७॥

श्रीमहादेव उवाच ।

शिवजी बोले - हे रामचन्द्र ! रावण और राक्षसोंके मारनेमें विचार करने की कुछ आवश्यकता नही, कारण कि उसका काल आगया है ॥२८॥

वे देवता और ब्राह्मणका दुःख देनेरूपी अधर्ममें प्रवृत्त हुए है सुव्रत! इस कारण उनकी आयु और लक्ष्मीका भी क्षय हो गया है ॥२९॥

उसने राजस्त्री जानकीजी की अवमानना की है । इस कारण तुम उसे सहज में मार सकोगे, कारण कि वह इस समय मद्यपानमें आसक्त रहता है ॥३०॥

अधर्ममें प्रीति करनेवाला शत्रु भाग्यसे ही प्राप्त होता है । जिसने वेदशास्त्र पढा हो और सदा धर्ममें प्रीति करता हो वह विनाशकाल आने पर धर्मको त्याग कर देता है ॥३१॥

जो पापी सदा देवता, ब्राह्मण और ऋषियों को दुःख देता है, उसका नाश स्वयं होता है ॥३२॥

हे राम ! किष्किंधा नामक नगरमें देवताओंके अंशसे बहुतसे महाबली और दुर्जय वानर उत्पन्न हुए है ॥३३॥

वे सब तुम्हारी सहायता करेंगे । उनके द्वारा तुम सागरपर सेतु बंधवाना अनेक पर्वत पर लाकर वे वानर पुल बांधेगे उसपर सब वानर उतर जायेंगे । इस प्रकार रावणको उसके साथियों सहित मारकर वहां से अपनी प्रियाको लाओ ॥३४॥

जहां संग्राममें शस्त्रसे ही जय प्राप्त होनेकी संभावना हो वहां अस्त्रोंका प्रयोग न करना और जिनके पास अस्त्र नही है अथवा थोडे शस्त्र है तथा जो भाग रहे ऐसे पुरुषोके ऊपर दिव्यास्त्रका प्रयोग करनेवाला स्वयं नष्ट हो जाता है ॥३५॥

बहुत कहने से क्या है यह संसार जो मेरा ही उत्पन्न किया है, मै ही इसका पालन और मै ही इसका संहार करता हूँ

॥३६॥

मै ही एक जगत् की मृत्यु का भी मृत्युस्वरूप हूँ, हे राजन्! मै ही इस चराचर जगत् का भक्षण करनेवाला हूँ ॥३७॥

इति श्रीपद्मपुराणे शिवगीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे शिवराघवसंवादे रामाय वरप्रदानं नाम पञ्चमोऽध्यायः ॥५॥

वे युद्धदुर्मद सब राक्षस तो मेरे मुखमें प्राप्त हो चुके है तुम निमित्तमात्र होकर संग्राममें कीर्ति पाओगे ॥३८॥

इति श्रीपद्मपुराणे शिवगीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे शिवराघवसंवादे रामाय वरप्रदानं नाम पञ्चमोऽध्यायः ॥५॥

अध्याय ६

श्रीरामचन्द्र बोले, हे भगवन् ! आप कहते हो कि मै ही जगत्की उत्पत्ति और पालन करता हूँ इसमें मुझे बड़ा आश्चर्य है । स्वच्छ स्फटिक मणिकी समान जिनका शरीर और तीन नेत्र तथा मस्तकपर चन्द्रमा है ॥१॥

ऐसे आप परिच्छिन्न और पुरुषाकृति मूर्ति धारण किये हो और पार्वती सहित प्रमथ आदि गणों के साथ यही विहार करते हो ॥२॥

फिर तुमने पंचभूतादि यह चराचर जगत् कैसे उत्पन्न किया है । हे गिरिजापते! जो आपकी मुझपर कृपा है तो आप कहिये ॥३॥

श्रीभगवानुवाच ।

श्रीभगवान बोले- हे महाभाग रामचंद्र! सुनो, जो देवताओंकी भी बुद्धिमें नही आता वह से यत्नपूर्वक तुमसे कहता हूँ, जिससे तुम अनायास ही संसार के पार हो जाओगे ॥४॥

जो कुछ यह पाँच महाभूत, चौदह भुवन, समुद्र, पर्वत, देवता, राक्षस और ऋषि दीखते है ॥५॥

१ चौदहभुवन भूः भुवः, स्वः, महः, जनः, तपः, सत्यं यह सात ऊपरके लोक, अतल, वितल, सुतल, रसातल,तलातल, महातल और पाताल यह सात अधोलोक मिलकर चौदह लोक हुए ।

तथा और स्थावर जंगम, गन्धर्व, प्रमथ और नाग दीखते है यह सब मेरी विभूति है ॥६॥

प्रथम ब्रह्मादि देवता मेरा रूप देखनेके निमित्त मेरे प्रिय मंदराचल पर गये ॥७॥

देवता हाथ जोड मेरे आगे स्थित हुए तब मैने देवताओं को लीलासे व्याकुलचित्त जानकर उन ब्रह्मादि देवताओका ज्ञान हरलिया ॥८॥

वे तत्काल ही ज्ञानरहित हो हमसे बोले तुम कौन हो? तब मैने देवताओंसे कहा मै ही पुरातन हूँ ॥९॥

हे देवताओं! सृष्टिसे पहिले मै ही था, वर्तमानमें भी मै ही हूँ और अन्तमें भी मै ही रहूँगा । इस लोकमें मेरे सिवाय और कुछ नही ॥१०॥

हे सुरेश्वरो! मुझसे व्यतिरिक्त और कुछ वस्तु नही है ॥ नित्य अनित्य भी मै ही हूँ तथा मै ही पापरहित वेद और ब्रह्माका भी पति हूँ ॥११॥

मै ही दक्षिण उत्तर पूर्व पश्चिम हूँ । हे सुरेश्वरो! ऊपर नीचे दिशा विदिशा सब मै ही हूँ ॥१२॥

सावित्री, गायत्री, स्त्री, पुरुष, नपुंसक, त्रिष्टुप्, जगती, अनुष्टुप् और पंक्ति छन्दभी मै ही हूँ, तथा मै ही तीनो वेदोंमे वर्णन किया गया हूँ ॥१३॥

मै ही सत्यस्वरूप मायाके विकास से रहित हूँ, सब प्रकार शांत दक्षिणाग्नि, गार्हपत्य, आहवनीय तीन अग्निस्वरूप हूँ, गौ, गुरुमें गुरुता, वाणीका रहस्य, स्वर्ग और जगत् का पति मै ही हूँ ॥१४॥

मै ही सबसे ज्येष्ठ सब देवताओं से श्रेष्ठ ज्ञानियोंमें पूज्य सब जलोंका पति सागर मै ही हूँ । मै ही अर्चा के योग्य षड्गुण ऐश्वर्यसम्पन्न तेजः स्वप्न और उसकी आदिवायु भी मै ही हूँ ॥१५॥

मै ही ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और श्रेष्ठ अंगिरस अथर्ववेद हूँ मै ही स्वयम्भू हूँ ॥१६॥

भारतादि इतिहास, ब्राह्मपुराणादि पुराण, कल्पसूत्र, उनका प्रवर्तक बोधायनादि ऋषि, नाराशंसी नामक रुद्रतत्त्वके प्रतिपादक मुख्य तत्त्व की प्रतिपादन करनेवाली गाथा, उपासनाकाण्ड, उपनिषद् यह सब मै ही हूँ ॥१७॥

'तदप्येश श्लोको भवति' इत्यादि श्लोक सांख्ययोगादि सूत्र व्याख्यान अनुव्याख्यान गान्धर्वगान विद्यादि यज्ञहोम आहुति ॥१८॥

गाय आदि दानके पदार्थ दान देना, यह लोक, अविनाशि पर लोक, क्षर-प्राणीमात्रों के हृदयमें वास करनेहारा, इन्द्रियनिग्रह, मनोनिग्रह और खग-जीवनभी मै ही हूँ, सब वेदोंमें गूढ भी ही हूँ, निर्जनस्थानवासी भी मैं हूँ, जन्मरहितभी मैं ही हूँ ॥१९॥

पुष्कर, पवित्र, सबके मध्य और बाहर भीतर आहे अविनाशी मै ही हूँ ॥२०॥

तेज, अन्धकार, इन्द्रिय, इन्द्रियके गुण, बुद्धि, अहंकार और शब्दादि विषय मै ही हूँ ॥२१॥

ब्रह्मा, विष्णु, महेश्वर, उमा, स्कन्द, गणपति, इंद्र, अग्नि, यम, निऋति, वरुण, वायु ॥२२॥

कुबेर, ईशान, भूःभुव, स्वः, महः, जनः, तपः, सत्यं, यह सात लोक, पृथ्वी, जल, वायु ॥२३॥

आकाश, सूर्य, चन्द्र, नक्षत्र, ग्रह, प्राण, काल, मृत्यु, अमृत, भूत, प्राणी यह सब मै ही हूँ ॥२४॥

वर्तमान और भविष्य मै ही हूँ, सम्पूर्ण विश्व सर्वरूपभी मै ही हूँ ओंकारके आदि और मध्यमें भूर्भुवः स्वः मै ही हं और गायत्री शीर्ष जपनेवालोंका विराट् स्वरूप भी मै ही हूँ ॥२५॥

भक्षण, पान, कृत, अकृत, (नही किया) तथा पर, अपर, मै ही हूँ और सबका आश्रय मै ही हूँ ॥२६॥

मै ही जगत का हित, अक्षर, सूक्ष्म, दिव्य, प्रजापति, पवित्र, सोम, देवता, अग्राह्यं (जो ग्रहण करने में न आवे) और सबका आदि मै ही हूँ ॥२७॥

मै ही सबका उपसंहार करनेवाला, मै ही पर्वत, सागर इत्यादि गुरुवस्तू और प्रलयकालिक अग्नि सूर्यादितेज इन सब पदार्थों में विद्यमान हूँ, मै ही सब प्राणियों के हृदयमें देवता और प्राणरूप से स्थित हूँ ॥२८॥

जिसका शिर (स्पर्श संज्ञकवर्ण) उत्तरको, और जिसके पाद (उष्म संज्ञक वर्ण) दक्षिणको और जिसके अन्तर अन्तस्थसंज्ञक वर्ण) मध्यमें है ऐसा त्रिमासिक साक्षात ओंकार मैं हूँ ॥२९॥

जिस कारणसे कि मैं जप करनेवालों को स्वर्गादि लोकको ले जाता हूँ पुण्यक्षीण पुरुषोंको नीचे ले ता हौं, इस कारण मै एक निरन्तर नित्य सनातन ओंकार हूँ ॥३०॥

यज्ञकर्म में ब्रह्मा नामक ऋत्विक होकर ऋग्यजु और सामके मन्त्र ऋत्विजो को देता हूँ, इस कारण मैं ही प्रणवस्वरूप हूँ, तात्पर्य यह कि सब मै ही हूँ ॥३१॥

जैसे घृत तैलादि स्नेह द्रव्य मांसपिंडमें व्यापत होकर भक्षण करनेवाले की सब देह को व्याप्त करते है, इसी प्रकार सब लोकोंमें अधिष्ठानरूप से व्याप्त होकर मै सर्वव्यापी हूँ ॥३२॥

ब्रह्मा हरि भगवान् व और दूसरे देवभी मेरा आदि और अन्त नही ऐसा जानते इस कारणसे मैं अनन्त हूँ ॥३३॥

गर्भवास जन्म जरा मृत्युसे भरे संसारसागर से मै भक्तोंको तारता हूँ इस कारण मेरा नाम तारक है ॥३४॥

जरायजु, स्वेदज, अंडज, अद्भिज्ज इन चार प्रकारके देहो में मै जीवरूपसे वास करता हूँ, और इनके हृदयाकाशमें सूक्ष्मरूप होकर वास करता हूँ, इससे मै सूक्ष्म कहता हूँ ॥३५॥

महाअन्धकारमें मग्न हुए भक्तों को उद्धार करनेके निमित्त बिजलीकी समान दीप्तिमान् निरुपम तेजरूप प्रगट करता हु इस कारण मै विद्युत्स्वरूप हूँ ॥३६॥

जिस कारणसे कि मै एकही लोकोंको उत्पन्न अरु संसार करके लोकान्तरमें पहूँचाता हूँ अरु ग्रहण करता हूँ इस कारणसे मुझे स्वतंत्र और एक ईश्वर कहते है ॥३७॥

प्रलयकालमें कोई दूसरा स्थित नही रहता केवल मै ही तीन गुणोंसे परे स्वयं ब्रह्मरुद्रस्वरूप सब प्राणियों को अपने में लय करके स्थित होता हूँ ॥३८॥

जो कि मै सब लोकोंकी ईशिनी अर्थात् सब लोकोंको स्वाधीन रखनेवाली शक्तियों से स्वाधीन रखता हूँ उन पर सत्ता चलाता हूँ इस कारण सर्वद्रष्टा सबका चक्षु मै ईशान कहाता हूँ ॥३९॥

मै स्थिर और चर सब प्राणियों का सदा ईश्वर हू तथा सब विद्याओंका अधिपति हूँ, अर्थात् सर्व ईश्वर शक्तिसम्पन्न हूँ, इससे मेरा ईशान नाम सार्थक है ॥४०॥

मै सब अतीत और अनागत पदार्थोंको आत्मज्ञानसे देखता हूँ, इसी प्रकार साधनसम्पन्न पुरुष को आत्मज्ञानरूपयोग का उपदेश करता हूँ और सबमें व्यापने से मै भगवान ऐश्वर्यवाने हूँ ॥४१॥

मै निरन्तर सब लोकोंकी उत्पत्ति, पालन और संहार करता हूँ, इस कारण मुझे महेश कहते है ॥४२॥

महत् पुरुषों में आत्मज्ञान और अष्टांग योगसे जो महिमा विद्यमान है और जो सब पदार्थों को उत्पन्न करके रक्षा करता है वह महादेव मै ही हूँ ॥४३॥

मै ही श्रुतिप्रतिपादित एक देव सम्पूर्ण दिशाओंमें वर्तमान हूँ मै ही सबसे प्रथम गर्भमें वास करनेहारा, गर्भसे निकलनेहारा और पीछे उत्पन्न होनेहारा हू मै ही सम्पूर्ण लोक हूँ और सब दिशाओं में मेरा ही मुख है ॥४४॥

सर्वत्र मेरे नेत्र सर्वत्र मेरा मुख सर्वत्र मेरी भुजा और सर्वत्र मेरे चरण है मै ही भुजा और चरणोंसे स्वर्ग और भूमिको उत्पन्न करता हुआ एक देवस्वरूप हूँ ॥४५॥

केशके अग्रभागकी समान सूक्ष्मरूप हृदयमें रहनेवाला, विश्वव्यापक, स्वप्रकाश, श्रेष्ठ आत्मस्वरूप मै हूँ मुझे जो चतुर पुरुष तत्त्वमस्यादि वाक्यों के ज्ञानसे (वह तु है) ऐसी उपाधि त्यागकर जीव और ब्रह्म को एकता से देखते है अर्थात् एकस्वरूप जानते है वही निरन्तर मोक्ष को प्राप्त होते है दूसरे नही ॥४६॥

सीपी में जो रजतबुद्धि है यह भ्रम ही है परन्तु रजतके भ्रमका आधार शुक्ति यथार्थ है उसी प्रकार मेरे स्वरूपमें भासनेहारा जगत् मिथ्या है परन्तु उसका आधार मै सत्य तथा एकरूप हूँ मै ही यह पंचभूतात्मक जगत् धारण किये हूँ ऐसे मुझे ईश्वरके स्वरूपमें जो विवेक करेगा उसको अनन्त शान्ति अर्थात् मुक्तिकी प्राप्ति होगी ॥४७॥

प्राणका ही अन्तर्गत मन है वहां क्षुधा पिपासा और तृष्णा रहती है इससे शुभाशुभ फल प्राप्तिका कारण जो धर्म अधर्म है उसके भी कारण विषयतृष्णा को छिन्नकर निश्चयात्मक बुद्धि मुझमें अन्तःकरण लगाकर जो मेरा ध्यान करते है उनको निरन्तर शांति और मोक्षसुख प्राप्त होता है दूसरोंको नही ॥४८॥

जहां वीणा की गति नही जहां मन नहीं पहुंच सकता इस प्रकार आनन्द ब्रह्मरूप मेरे जाननेवाले को कहीं से भय प्राप्त नही होता ॥४९॥

इस कारण देवता मेरे वचन जो कि आत्मस्वरूप ज्ञानके देनेवाले है सुनकर मेरा नामका जप करके मेरेही ध्यानपरायण हुए ॥५०॥

देहान्तमें वे सब मेरे सायुज्यको प्राप्त होगये । जो कुछ ये पदार्थ दीखते है यह सब मेरी ही विभूति है ॥५१॥

यह सब वस्तु मुझहीसे उत्पन्न है औरु मुझही में प्रतिष्ठित है और अन्तमें मुझमें ही लय हो जाती है मैं ही अद्वय ब्रह्म हूँ ॥५२॥

मै ही सूक्ष्मसे भी अति सूक्ष्म महानसे भी महान मै ही विश्वरूप निर्लेप पुरातन पुरुष सर्वेश्वर तेजोमय और शिवरूप हूँ ॥५३॥

मेरे हस्त चरण नही और सब कुछ कर सकता हूँ मेरी शक्ति किसी के ध्यानमें नही आती मेरे भौतिक नेत्र नही तथापि सब कुछ देखता हूँ कान नही और सब कुछ सुनता हूँ मै सत् असत् सब विचारको जानता हूँ मेरा एकान्तस्वरूप हूँ मेरा जाननेवाला कोई नही मै सदा चैतन्यस्वरूप हूँ ॥५४॥

सम्पूर्ण वेदोंमें मै ही जानने योग्य हूँ वेदान्तका कर्ता और वेदका जाननेवाला भी मै ही हूँ । मुझमें पाप और पुण्य नही, मेरा नाश तथा जन्म नही मुझे देह इन्द्रिय और बुद्धिका संबंध नही है ॥५५॥

भूमि, जल, तेज, वायु आकाश इनसे मै लिप्त नही हूँ । इस प्रकारसे पंचकोशात्मक गुहामें निवासा करनेहारा निर्विकार संगरहित सर्वसाक्षी कार्यकारण भेदशून्य परमात्मा हूँ । जो मुझको इस प्रकार से जानते है वह मेरे शुद्ध परमात्मस्वरूप को प्राप्त होते है ॥५६॥

हे महाबुद्धिमन्! रामचन्द्र! इस प्रकार जो मुझे तत्त्वसे जानता है वही संसारमें मुक्त होता है दूसरा नही ॥५७॥

इति श्रीपद्मपुराणे शिवगीतासूपनिषत्सु० विभूति योगो नाम षष्ठोऽध्यायः ॥६॥

अध्याय ७

श्रीरामचन्द्र बोले - हे भगवन् ! जो कुछ मैने प्रश्न किया है वह तो उस प्रकार स्थित है, हे महेश्वर! आपने इस विषयका कोई उत्तर नही दिया ॥१॥

हे महेश्वर ! आपका देह परिच्छिन्नपरिमाण अर्थात् इयत्ता करनेके योग्य है फिर सब संसारकी उत्पत्ति पालन नाश कैसे करते हो ॥२॥

इसी प्रकार अपने २ अधिकार के पालन करनेवाले इन्द्र वरुणादि सब देवता तुम्हारी देह में कैसे रहते है और वे सब देवता और चौदह भुवन यह मैं ही हूँ, ऐसा जो तुम कहते तो कैसे कहते हो अर्थात् जबतक उपाधि है तबतक जीव ईश्वरका अभेद संभावित नही होता और जड प्रपंच महाभूतोंमें चेतनाका तादाम्य संभावति नही ॥३॥

हे देव! आपसे उत्तर सुना परन्तु संदेह नही जाता कारण कि चित्तका निश्चय नही उस सन्देहकी दूर करनेको आपही समर्थ हो ॥४॥

श्रीभगवानुवाच ।

श्रीभगवान् बोले ! सूक्ष्म वटके बीजमें जिस प्रकार महान वटका वृक्ष सदा रहता है और उसीसे वह वृक्ष निकल भी आता है यदि ऐसा न हो तो बताओ वह वृक्ष कहां से आता है इसी प्रकार मेरे सूक्ष्म शरीरसे सब भूतोंका जन्म पालन और नाश होता है ॥५॥

जिस प्रकारसे जलके बीचमें बड़ा सैन्धेका खण्ड डालनेसे वह उसमें विलीन होजाता है और नही दीखता पीछे जलको अग्निमें औटाने से वह पूर्ववत् प्राप्त हो जाता है ॥६॥

अथवा जैसे प्रतिदिन सूर्यसे प्रकाश उत्पन्न होता और संध्या समय विलीन हो जाता है इसी प्रकार मुझसे जगत् उत्पन्न होकर विलीन हो जाता है और मुझमें हि स्थिर रहता है । हे सुव्रत राम! तुम ऐसा जानो ॥७॥

श्रीराम उवाच ।

श्रीरामचंद्र बोले- हे भगवन् ! आपने दृष्टान्तसे प्रतिपादन किया परन्तु जिस प्रकार दिशाओंके भ्रमवाले को उत्तरादि दिशाओंका भ्रम हो जाता है, इसी प्रकार मुझे भ्रम हो गया है । वह निवृत्त नही होता मै क्या करूं ॥८॥

श्रीभगवानुवाच ।

श्रीभगवान बोले - हे राम ! जिस प्रकार यह चराचर जगत् मुझमें वर्तमान है, सो मैं तुमको दिखाता हूँ परन्तु तुम उसे देखनेको समर्थ नही ॥९॥

इस कारण उसके देखनेको मै तुम्हे दिव्यनेत्र देता हूँ, उन नेत्रोंसे भय त्यागकर तुम मेरा दिव्य स्वरूप देखो ॥१०॥

नरेन्द्र वा देवता इस मेरे तेज स्वरूपको मेरे अनुग्रह बिना चर्म चक्षुसे नही देखे सकते ॥११॥

सूत उवाच ।

सूतजी बोले ऐसा कहकर शिवजीने रामचन्द्रको दिव्यनेत्र दिये और पातालकी समान बडा विस्तृत मुख रामचन्द्रको दिखाया ॥१२॥

करोड़ो बिजलीकी समान प्रकाशमान अतिशय भयदायक भयंकर उस रूपको देखतेही रामचन्द्र जंघाओं के बलसे पृथ्वी में बैठ गये ॥१३॥

प्रणाम और दंडवत् करके शिवजीको बारंबार प्रसन्न करने लगे फिर महाबली रामचन्द्र उठकर जबतक देखते है ॥१४॥

जबतक त्रिपुरघाती शिवजीके मुखमें करोड़ो ब्रह्मान्ड प्रलय कालकी अग्निमें व्याप्त होकर चटका पक्षीके पंखो कि समान दीखे ॥१५॥

सुमेरू, मंदराचल, विंध्याचलादि पर्वत, सात समुद्र, चंद्र सूर्यादि सब ग्रह, पांच महाभूत और शिवजीके साथ आये हुए सब देवता ॥१६॥

वन, बडे २ सर्प, चौदह भुवन इस प्रकार रामचन्द्रने प्रत्येक ब्रह्माण्डको देखकर ॥१७॥

उन्हीमें पूर्वकालमे हुआ देवता और असुरोंका संग्रामभी देखा विष्णुके दश अवतार और उनके कर्तत्य कंसवध रावणवध आदि ॥१८॥

युद्धमें देवताओंकी पराजय, शिवजीका त्रिपुरासूरको मारना इसी प्रकार उत्पन्न हुए सम्पूर्ण जीवों का लय देखकर ॥१९॥

रामचंद्र भयभीत हो बारंबार प्रणाम करने लगे । यद्यपि रामचन्द्र को तत्त्वज्ञान भी हो गया था तथापि भयभीत हो गये ॥२०॥

तब उपनिषदोंका सार और अर्थरूप वाणीसे शिवजीकी स्तुति करने लगे ॥२१॥

श्रीराम उवाच ।

श्रीरामचन्द्र बोले । हे विश्वेश्वर ! हे शरणागतदुःखनाशक, हे चन्द्रशेखर! प्रसन्न हूजिये और संसारके भयसे मुझ अनाथकी रक्षा कीजिये ॥२२॥

हे शंकर! यह भूमि और इस पर उत्पन्न होनेवाले वृक्षादि सब आपसे ही उत्पन्न हुए है यह सब नित्य तुमही में स्थित रहते है । हे शिव! अन्तमें यह सब तुम्हीमें स्थित हो जाते है ॥२३॥

ब्रह्मा, इन्द्र, एकादश, रुद्र, मरुद्गण, गन्धर्व, यक्ष, असुर, सिद्ध, गंगादि नदी, सागर यह सब हे शूल धारणकरनेवाले ! तुम्हारे मुखमें दीखते है ॥२४॥

हे चन्द्रमौले! तुम्हारी मायासे कल्पित हुआ यह विश्व तुम्हारे ही स्वरूपमें प्रतीत होता है, इसे भ्रांतियुक्त होकर पुरुष इस प्रकारसे देखते है जिसप्रकारसे शुक्तिमें रजतका और रस्सीमें सर्पका भ्रम उत्पन्न होता है, वह भ्रांति वैसी नहीं है यह जैसी भ्रांति होती है वह पदार्थ अन्यत्र सिद्ध होता है और नही भी होता, जैसे शुक्तिमें रजतकी भ्रांति हुई । परन्तु रूपा पदार्थ दूसरे स्थानमें विद्यमान है, तैसे यह जगत् तुम्हारे स्वरूपसे बचकर अन्यत्र नही दीखता इसीसे लोक इसको शुक्तिका रजतवत् भ्रम मानते है ॥२५॥

आप अपने तेजसे सब जगत् व्याप्त और प्रकाश करते हो । हे देवदेव! आपके प्रकाश के बिना तो हज जगत् क्षणमात्रमें अदृश्य हो जाय ॥२६॥

जो पदार्थ थोडे आश्रयवाला है वह बडे पदार्थको धारण करनेमे समर्थ नही होता, जिसप्रकार एक अणु विंध्याचलको धारण नही कर सकता और तुम्हारे मुखमात्रमें यह सब जगत् दीखता है । यह सब आपकी माया है, वास्तविक नही ऐसा मुझे निश्चय है ॥२७॥

जिस प्रकारसे रज्जुमें सर्प की भ्रांति भयदायक होती है, यद्यपि वहां वास्तवमें सर्प उत्पन्न नही होता और भ्रमके नाश होनेपर सबका नाशभी नही होता (यथार्थ ही है कि जो उत्पन्न नही हुआ उसका नाश होनेवाला नही) परन्तु यह भय देनेवाला होता है इसी प्रकार तुम्हारी मायासे जिसको अस्तित्व प्राप्त हुआ है, ऐसा यह जगत् मिथ्या भ्रांतिके कार्य को सत्य उत्पन्न करता है ॥२८॥

जो यह तुम्हारा शरीर जगतका आधारभूत दीखता है यदि विचार दृष्टिसे देखा जाय तो भी यह अज्ञान दृष्टि की कल्पना है कारण कि तुम सच्चिदानन्दरूप और सर्वत्र पूर्ण हो ॥२९॥

ऐसा है तो कर्मकाण्डप्रतिपादक सर्व श्रुति व्यर्थ हुई, पर ऐसा नही । यज्ञ इष्टापूर्त दान अध्ययनादि कर्मोंका फल तुम कर्ताको देते हो, यह कर्मकाण्डपर विश्वास रखनेका प्रमाण है, परन्तु महापुण्योंके उदयसे जब ब्रह्मका साक्षात्कार होता है और यह सब प्रपंच तुमसे अभिन्न दीखने लगता है, तब तुम क्यों कर्मो का फल देते हो? अर्थात् नही देते तब कर्मकांडप्रतिपादक कथा असिद्ध हो जाती है ॥३०॥

ज्ञानहीन अविचारी पुरुष ही पूजा यज्ञ आदि बाह्य कर्मोसे शिव संतुष्ट होते है ऐसा कहते है परन्तु यह ठीक नही कारण कि जो अमूर्त परिमाणरहित और अनन्त है उसको भोगकी इच्छा नही होती ॥३१॥

इसी प्रकार किंचित बेलपत्रवा चुल्लूभर जल से प्रीतिसे आपको देता है वह प्रीतिसे स्वीकार करके आप उसे स्वराज्यपद देते हो यह भी माया से कल्पित है ऐसा मेरा निश्चय है ॥३२॥

तुमही एक पुराण पुरुष सम्पूर्ण दिशा बिदिशा और विश्वमें व्याप्त हो, इस जगत् के नाश होनेमें भी तुम्हारी हानि नही हो सकती, जिस प्रकार घटके नाश होनेसे घंटमे व्यापी आकाशकी हानि नही हो सकती, इसी प्रकार जगत् के नाशसे तुम्हारी कुछ हानि नही ॥३३॥

जिस प्रकार आकाशमें एकही सूर्यका बिंब जल भरेहुए छोटे पात्रोमें अनेक बिंबत्वको प्राप्त होता है अर्थात् अनेकरूप दीखते है इसी प्रकारसे आप एक होकर भी सबके अन्तःकरणमें अनेकरूपसे विराजते हो ॥३४॥

संसारके उत्पत्ति पालन और नाश होनेमे भी तुम्हारा कुछ कर्तव्य नही है केवल अनादि सिद्ध देहधारियोंके कर्मानुसार स्वप्नवत् तुम सब कार्य करते हो, जीव ईश्वरमें केवल बिम्ब और प्रतिबिंबकी समान अन्तर है ॥३५॥

हे शंभो! स्थूल और सूक्ष्म दोनों जड़ देहोंमे आत्मतत्वके सिवाय दूसरा चैतन्य अंश नही है, हे पुरमथन! सुख दुःख जो दोनों देहको होते है उनकी कहनेवाली श्रुति केवल आपमें आरोप करती है, वास्तविक नही ॥३६॥

हे भगवन् ! सच्चिदानन्दरूप समुद्रमें हंसरूप नीलकण्ठ कालस्वरूप भक्तजनोंके सम्पूर्ण पातक दूर करनेवाले और सबके साक्षी आपके वास्ते नमस्कार है ॥३७॥

सूत उवाच ।

सूतजी बोले, इस प्रकार विश्वेश्वरको प्रणाम कर, हाथ जोड़ विस्मित हो रामचन्द्र परमेश शिवजीसे बोले ॥३८॥

श्रीराम उवाच ।

श्रीरामचन्द्र बोले, हे विश्वात्मन् ! यह अपना विश्वरूप आप उपसंहार करिये । हे शंकर! आपके अनुग्रहसे आपमें एकत्र स्थित सब जगतको देखकर मुझे प्रतीति हुई ॥३९॥

श्रीभगवानुवाच ।

श्रीभगवान बोले, हे महाभुज! रामचन्द्र! देखो मुझसे दूसरा कोई नही है ।

सूत उवाच ।

सूतजी बोले - ऐसा कहकर शिवजीने अपने देहमें से देवतादिकों को गुप्त किया, अर्थात् विश्वरूप छिपा लिया ॥४०॥

आंख खोल फिर जो रामचन्द्र प्रसन्न होकर देखते है इतने ही समयमें पर्वत के श्रृंगपर व्याघ्रचर्मपर स्थित पंचमुख नीलकण्ठ त्रिलोचन शिवजीको देखा ॥४१॥

जो व्याघ्रचर्मका वस्त्र ओढे, शरीरमें विभूति लगाये है, सर्पके कंकण पहरे, नागका यज्ञोपवीत धारे ॥४२॥

व्याघ्रचर्मका ही वस्त्र ओढे बिजलीकी समान पीली जटा धारे इकले मस्तकपर चन्द्रमा धारे श्रेष्ठ भक्तोंके अभय देनेहारे ॥४३॥

चार भुजा शत्रुनाशक परशा धारण किये मृग हाथमें लिये सब जगत् के पति शिवजीको देख उनकी आज्ञामें मन लगाये प्रणाम करके रामचन्द्र स्थित हुए ॥४४॥

तब शिवजी रामचन्द्रसे बोले जो जो तुम्हारे पूछने की इच्छा है वह तुम सब पूछो । हे राम! मेरे सिवाय दूसरा कोई तुम्हारा गुरु नही है ॥४५॥

इति श्रीपद्मपुराणे उपरिभागे शिवगीतासूपनिषत्सु ब्रह्म० योगशास्त्रे शिवराघवसंवादे विश्वरूपदर्शनं नाम सप्तमोऽध्यायः ॥७॥

अध्याय ८

श्रीरामचन्द्र बोले, पंचभूतके देहकी उत्पत्ति स्थिति नाश किस प्रकारसे होता है और इसका स्वरूप क्या है, हे भगवन्! विस्तारपूर्वक आप मुझसे कहिये ॥१॥

श्रीभगवान बोले - पृथ्वी आदि पंचभूतसे बना हुआ यह शरीर देह है, इसमें पृथ्वी प्रधान है और दूसरे चार इसमें मिले हुए अर्थात सहकारी है ॥२॥

जरायुज, अंडज, स्वेदज और उद्भिज्ज यह पांचभौतिक देहके चार भेद है ॥३॥

और मानसिक उत्पत्ति जो कहाती है वह पांचवी है उसे दैवसर्ग कहते है, उन चारोंमें जरायुज प्रधान है, सो प्रथम उसीका वर्णन करते है ॥४॥

स्त्रीके रज पुरुषके बीजसे जरायुजकी उत्पत्ति होती है जिस समय ऋतुकालमें स्त्रीके गर्भाशयमें पुरुषका वीर्यप्रवेश होता है ॥५॥

स्त्रीका रज मिलित होता है तभी जरायुज की उत्पत्ति होती है । स्त्रीका रज अधिक होनेसे कन्या और वीर्य अधिक होनेसे पुरुषकी उत्पत्ति होती है ॥६॥

और शुक्र शोणितकी समान होने से नपुंसक होता है, जब स्त्री ऋतुस्नान कर चुके तब चौथे दिनसे सोलह रात्रितक ऋतुकालकी अवधि कही है ॥७॥

उसमें विषम दिन पांचवे सातवे नववें दिनमें स्त्री और युग्म दिनमें पुरुषकी उत्पत्ति होती है ॥८॥

जो सोलहवी रात्रिमें स्त्रीके गर्भ रहता है, तो चक्रवर्ती राजा उत्पन्न होता है इसमें संदेह नही ॥९॥

ऋतुमें स्नान करके जो स्त्री कामातुर हो जिस पुरुष का मुख देखती है, उसी आकृति का गर्भ होता है, इसी कारणसे स्त्री उस दिन स्वामी का मुख देखे ॥१०॥

स्त्रीके उदरमें एक पेशी चमडा निर्मित होता है उसे जरायु कहते है, जिस कारणसे शुक्र और शोणितका योग उसी गर्भमें होता है इसी कारणसे उसे जरायुज कहते है ॥११॥

सर्प और पक्षी आदि जीव अंडज कहलाते है, मशकादि स्वेदज कहलाते है, वृक्षगुल्मादि उद्भिज्ज कहाते है, और देवर्षि आदि मानसिक कहाते है ॥१२॥

अपने पूर्वजन्मके कर्मवशसे यह प्राणी स्त्रीके गर्भाशयमें प्राप्त होकर शुक्र शोणितके मिलनेसे प्रथममासमें शिथिल रहता है ॥१३॥

कुछ दिनोंमें उसकी बुदबुदकी आकृति होने लगती है, कुछ दिनोंमें जेरसी होती है, इस कारण उसमें दहीकी समान कुछ गाढापन आता है फिर कुछ दिन में उसकी पेशी (मांसपिंड) बनती है । इस प्रकार शुक्र शोणित संयोग होते हुए एकमास हो जाता है, दूसरे मांसमेंमांसपिंड बनता है ॥१४॥

तृतीयमासमें शिर, हाथ आदि उत्पन्न होते है, और जीवका आश्रय लिंगदेह चौथे महीनेमें उत्पन्न होता है ॥१५॥

तब यह गर्भ माताके उदरमें चलायमान होने लगता है । पुत्र दक्षिणपार्श्व और कन्या वामपार्श्वमें स्थित होती है ॥१६॥

और नपुंसक उदरके मध्यभागके स्थित होता है । इस कारण दक्षिणापार्श्वमें जन्म लेनेके अनन्तर होनेवाले श्मश्रु तथा दन्तादिको छोड़कर सब अंग प्रत्यंग के भाग ॥१७॥१८॥

एक साथ चौथे मासमें हो जाते है, पुरुषोंके गंभीरता स्थिरादि धर्म और स्त्रियों के चञ्चलतादि धर्म चौथेमासमें उत्पन्न हो जाते है जो सूक्ष्मरूपसे रहते है ॥१९॥

और नपुंसक गर्भके स्त्री पुरुषोंके मिले हुए धर्म गर्भमें उत्पन्न होते है और माताके हृदयमें सन्निकटही इसका हृदय होकर जिस वस्तुकी माता इच्छा करती है उसी वस्तुकी यह इच्छा करता है इस कारण गर्भकी वृद्धिके निमित्त माताकी इच्छा पूर्ण करनी चाहिये और इसीसे गर्भवती स्त्रीको दोहदवती अर्थात दो हृदयवाली कहते है ॥२०॥२१॥

और उसकी इच्छा पूर्ण न होने से गर्भमें निर्बलता, बुद्धिहीनता व्यंगतादि दोष हो जाते है । और माताका जिन विषयोंमें चित्त होता है उन विषयोमें ही आर्त वह पुरुष होता है, इसलिये गर्भिणीकी इच्छा पूर्ण करे ॥२२॥

पांचवे महीनेसे चित्त बढ़ता है तथा मांस और रक्तकी पुष्टि होती है, छठे महीनेमें, अस्थि स्नायु और नख मस्तकके केश तथा शरीरके लोभ प्रगट होते है ॥२३॥

सातवें मासमें बल शरीरका वर्ण तथा सब अवयवोंकी पूर्णता होती है और वह गर्भका बालक घुटनोंमें कोनी धर हाथोंसे कान ढक ॥२४॥

और गर्भवाससे व्याकुल होकर भयभीत हुआसा स्थित होता है ॥२५॥

उस समय इसको अनेक जन्मो की सुधि हो जाती है तब बड़ा दुःखी होता है और हा! कष्टकी बात है ऐसे कहता हुआ दुःखी होता है अपने आत्माको शोचता है ॥२६॥

वह असह्य और मर्मभेदी यातना को प्राप्त होकर बारंबार कष्ट पाता है जिस प्रकार से तपायें रेतमें उसीको डाल दो उसको जो वेदना होती है ऐसी वेदनाको वह प्राप्त होता है और दुःख भोगता है ॥२७॥

गर्भवासके दुःख यह है प्रथम गर्भवासकी अग्निसे (जो जठराग्नि कहाती है) सन्तप्त होकर कहता है कि यह ज्वाला मुझको अत्यन्त पीडित करती है ॥२८॥

इसी प्रकार उदरके कीए जब काटते है तो विदित होता है कि इनके मुख कूटशाल्मलिके काटेकी समान तीक्ष्ण है और यह मुझको अत्यन्त पीड़ित करते है ॥२९॥

गर्भकी बड़ी भारी दुर्गन्ध और जठराग्निकी ज्वालासे जो मुझको दुःख प्राप्त हुआ है, उससे कुम्भीपाक नरकका दुःख कम है ॥३०॥

मवाद, रक्त, कफ, अमंगल, पदार्थही पान करने और वांति भक्षण करने को मिलती है, अशुचि पदार्थ मल मुत्रादिमें रहनेसे गर्भमे स्थित प्राणी कीड़ाही हो जाता है ॥३१॥

जो दुःख गर्भशय्यामें सोकर मैने पाया है यह दुःख सम्पूर्ण नरकोंमें भी पडकर प्राप्त नही होता ॥३२॥

इस प्रकार से पूर्वकालमें प्राप्त हुई अनेक प्रकारकी यातनाओंको स्मरण करता हुआ मुक्त होनेका उपाय सोचता यही अभ्यास करता रहता है ॥३३॥

आठवे महीनेमे त्वचा और श्रुति प्राप्त होती है । इसी प्रकार ओज इन्द्रियशक्ति और तेज शरीरके आरम्भ करनेहारे तथा धातुपरिणामसे होनेहारे हृदयके तेज जो जीवनके मुख्य कारण है वह प्राप्त होते है ॥३४॥

कुछ समयतक अतिशय चंचल होनेके कारण किसी समय माताके हृदयमें चंचलरूपसे रहता है, कभी गर्भाशयमें चपलता को प्राप्त हो जाता है । इसी कारण अष्टम मासमें उत्पन्न हुआ बालक बहुध नही जीता कारण कि वह ओज और तेजसे हीन होता है ॥३५॥

फिर नौवें मासमें प्रसूतिका समय होता है परन्तु शीघ्र प्रसव होनेका प्रतिबंधक यह है कि, जो कुछ गर्भके प्रारब्ध कर्म हुए तो उसे और कुछ कालतक गर्भमें रहना पड़ता है ॥३६॥

माताकी एक रक्तवाहिनी नाडी नाबिचक्रकी एक नाड़ीसे मिली हुई है, उसीके द्वारा माताका भक्षण किया अन्न गर्भमें पहुँचता है, इस प्रकार माताके आहारसे पुष्टिको प्राप्त हो यह गर्भ उसीके द्वारा जीवित रहता है ॥३७॥

योनिचक्रमें इसके सम्पूर्ण अंग अस्थियोंसे पिचकर व्यधित होते है, तब यह प्रथम कुक्षिसे निकलकर योनिए बाहर आता है, उस समय उसका शरीर मेदा रुधिर से लिप्त और जरायुसे आच्छादित रहता है ॥३८॥

यह प्राणी अत्यन्त दुःख से पीड़ित हो नीचेको मुखकर जैसेही योनिचक्रसे निकलता है वैसेही ऊंचे स्वरसे रोता है, इस प्रकार गर्भवास के यन्त्रसे निकलकर दुःखही भोगता है, कही सुख नही मिलता ॥३९॥

जन्म लेकर यह कुछ भी नही कर सकता, केवल मांसके पिंडकी समान पड़ा रहता है, तब इसके मातापिता दंड हाथमे लिये कुत्ते बिलाव तथा डाढवाले जन्तुओंसे इसकी रक्षा करते है ॥४०॥

उस समय यह ज्ञानशून्यही पिताकी ही समान राक्षसोको भी जानता है, पीनेको दुग्ध जानकर पीनेकी अभिलाषा करता है, तात्पर्य यह है कि बाल अवस्थाभी महाकष्टकारक है ॥४१॥

जबतक सुषुम्ना नाडी कफसे आच्छादित रहती है तबतक स्फुट अक्षर और वचन बोलनेको वह समर्थ नही होता ॥४२॥

इसी कारणसे यह गर्भमेभी नही रो सकता ॥४३॥

पीछे युवा अवस्थाके आनेसे कामदेवके ज्वरसे विह्वलहो अकस्मात ही कभी कुछ गाता है कभी अपना पराक्रम कहने लगता है ॥४४॥

कभी अभिमानसे वृक्षों पर चढता, कभी शान्त प्राणियोंको उद्वेजित करता, कभी काम क्रोधके मदसे अन्धा हो किसीको भी नही देखता ॥४५॥

अस्थि मांस और नाडी इनके सिवाय स्त्रीके मन्मथ स्थानमें और क्या है जिसमें कि मेंढकके फाड़े हुए पेटकी समान दुर्गन्ध आती है परन्तु तथापि उसमें आसक्त हुआ कामबाण से पीड़ित हो अपने आत्मा को अत्यंत जलाता है ॥४६॥

अस्थि मांस शिरा और त्वचा इसके सिवाय स्त्री के शरीर में और क्या है जो यह पुरुष स्त्रियोंमें आसक्त होकर मायसे मूढ होनेके कारण जगत् में कुछ भी नही देखता ॥४७॥

एक समय प्राणपवन निर्गत हो जाने से भी मृगकेसे नेत्रवालीका यह देह व्यर्थता को प्राप्त होता है और पांच छः दिन बीतनेपर फिर वह देह दीखता भी नही ॥४८॥

इस प्रकार युवाअवस्थामें दुःख भोगने उपरांत वृद्धावस्थाका दुःख प्रारंभ होता है तब यह महानिरादरके स्थान जराको प्राप्त होकर महादुःखी होता है, इसका हृदय कफसे व्याप्त हो जाता है और खाया हुआ अन्नभी जीर्ण नही होता ॥४९॥

दांत गिर पडते है, दृष्टि मंद हो जाती है, तथा अनेक प्रकारके रोग होनेके कारण कटु तिक्त कषाय औषधियोंका सेवन करता है वायुसे कमर टेढी हो जाती है, कटि गर्दन हाथ जंघा चरण यह निर्बल हो जाते है ॥५०॥

तब सहस्त्रों रोग इसके शरीरमें लिपट जाते है बंधु तिरस्कार करते है (दोहा-सींग झडे और खुर घिसे, पीठ बोझ नहि लेय । ऐसे बूढे बैलको, कौन बांध भुस देय) तब यह पवित्रतारहित ही मलसे व्याप्त शरीर होनेके कारण नखशिखपर्यन्त सब शरीरोंसे सन्तप्त होता है ॥५१॥

तथापि ईश्वरका ध्यान नही करता और शय्या श्रेष्ठ भोजन आदि दुर्लभ भोगोंका ध्यान करता हुआ स्थित होता है इसके हाथ पैर कांपने लगते है, सब इन्द्रियोंकी शक्ति कुंठित हो जाती है और कोई सामर्थ्य न रहनेके कारण बालक भी इसकी हँसी करते है ॥५२॥

फिर इसके आगे मरणकालके दुःखका तो कोई दृष्टान्त ही नही, दरिद्रादि पीडा रोगादि पीड़ा कितनी ही प्राप्त हो उसको कुछ न गिनकर एक मरणके भयसे सबही भयभीत होते है ॥५३॥

बंधुओंसे घिरे हुए प्राणी को मृत्यु ले जाती है जिस प्रकार समुद्रमें प्राप्त हुए सर्पको गरुड ले जाता है ॥५४॥

हा प्रिये! हा धन! हा पुत्रो! इस प्रकार दारुण विलाप करते हुए इस पुरुषको मृत्यु इस प्रकार ले जाता है जैसे सर्प

मेंढकको ले जाता है ॥५५॥

सम्पूर्ण मर्मस्थानोंके टूटने और शरीरके अवयवोंकी संधियों भग्न होनेसे जो दुःख मरनेवाले को होता है वह मुमुक्षुओंको स्मरण करना चाहिये, इसके स्मरण करने से संसारसे वैराग्य होकर आवागमनसे छूटनेके निमित्त नारायणके चरणोमें ध्यान लगेगा ॥५६॥

यमदूतोंके दृष्टि आकर्षण करने और चेतना लुप्त हो जाने से कालपाशमें बन्धेका कोई रक्षक नही होता ॥५७॥

तब यह अज्ञानसे युक्त हो महत् चित्तमे प्रवेश होने से नही बोलता और जब भार्या पुत्रदि जातिके लोग पुकारते है तो उत्तर न देकर दीन नेत्रोंसे देखने लगता है ॥५८॥

तब इस जीवको लोहनिर्मित कालपाशसे यमदूत खैचते है एक ओरसे बंधुओंका स्नेह खेचता है तब यह कुछ नही कर सकता, तटस्थरूपसे देखता है ॥५९॥

हिचकी बढने और श्वास रुकने तथा तालुके सूखने से उस मृत्युके पकड़े हुएका कोई आश्रय नही होता ॥६०॥

संसाररूपी चक्रमें आरूढ हुआ यमदूतोंसे घिरा कालफांसीमें बंधा महादुःखी हो मै कहा जाऊँ इस प्रकारसे वह जीव विचार करता है ॥६१॥

क्या करूं, कहां जाऊ, क्या ग्रहण करूं, क्या त्याग दूँ इस प्रकार चिन्तन करता कर्तव्यतासे मूढ हो शीघ्रही प्राणोंको त्यागता है ॥६२॥

मार्ग में यमदूतोंसे घसीटा हुआ यातनाकी देहमें प्राप्त होकर यहांसे जाकर जिन जिन यमयातनाओंका दुःख भोगता है उन्हे कहने को कौन समर्थ है ॥६३॥

जिस शरीरको केशर कस्तूरी चन्दन कपूर आदि लगाकर सदा भूषित किया था जिसे अनेक गहनोंसे शोभित और वस्त्रोंसे आच्छादित किया था ॥६४॥

वह शरीर प्राणवायुके निर्गत होतेही छूनेके अयोग्य और देखनेको भी अयोग्य हो जाता है फिर कोई इसको क्षणमात्र न रखकर घरसे निकालने लगते है ॥६५॥

तब यह शरीर काष्ठसे जलाकर क्षणमात्रमें भस्म कर दिया जाता है (फूलबोझ जिन शिर न संभारे, तिनके अंग काठ बहु डारे ! शिरपीडा जिनकी नहिं हेरी, करत कपाल क्रिया तिनकेरी) अथवा श्रृगाल गृध्र कुत्ते कौए इसको खाजाते है फिर यह करोडों जन्मतकभी दृष्टिगोचर नही होता है ॥६६॥

जादूगरके समान उत्पन्न जादूसरीके इस जगतमे मेरी माता मेरा पिता मेरे गुरुजन मेरे स्वजन ऐसी कौन प्रतिज्ञा करता है? जीव केवल कर्मोको ही लेकर परलोक में जाता है, जैसे मार्गमें पथिकोंके विश्रामके लिये छायाका कोई वृक्ष आ जाता है, ऐसा ही यह मृत्युलोक है ॥६७॥

जिस प्रकारसे पक्षी संध्याकालमें वृक्षपर आकर बसेरा लेते है और प्रातःकाल उठकर एक दूसरे को त्याग अपने अभिलषित देशों मे चले जाते है इसी प्रकारसे जाति अजातिके पुरुषोंका समागम है, कर्मानुसार अपने कुटुम्बादिमें जन्म लेकर स्थित होते है, कर्म समाप्त होते ही अपनी गति को प्राप्त होते है । इससे मनुष्यको उचित है कि, प्राणियोंके समागमको पथिक समाजके समान जाने, यथा (या दुनियामें आयके, छांड देइ तू ऐंठ । लेना है सो लेइले, उठी जात है पैठ) ॥६८॥

मृत्युके बीजसे जन्म और जन्मके बीजसे मृत्यु होती है अर्थात जो उत्पन्न हुआ है उसका अवश्य नाश होगा और नाश हुआ अवश्य जन्म लेगा, यह प्राणी इसी प्रकार घटीयन्त्रकी समान निरंतर भ्रमण करता रहता है ॥६९॥

हे रामचन्द्र! गर्भके वीर्यके प्राप्त होनेसे इस प्रकारसे प्राणीका जन्म और मृत्यु होती है यह महाव्याधि है, जीवन मरण दोनों मेंही महादुःख होता है, इस व्याधि को दूर करनेके निमित्त मेरे सिवाय दूसरी औषधि नही (नान्यपंथाः विद्यते अयनायेति श्रुतेः) इस कारण मेरा भजन करना योग्य है ॥७०॥

इति श्रीपद्मपुराणे शिवगीतासूपनिषत्सु० शिवराघवसंवादे पिण्डोत्पत्तिकथनं नामाष्टमोऽध्यायः ॥८॥

अध्याय ९

श्रीभगवान बोले - हे राजन! तुम सावधान होकर सुनो, मै तुमसे देहका स्वरूप कहता हूँ, यह संसार मुझहीसे उत्पन्न होता है मुझही से धारण किया जाता है ॥१॥

और जिस प्रकार भ्रम निवृत होने से रजत सीपमें लय हो जाती है इसी प्रकार यह जगत् ज्ञानसे मुझमें लय हो जाता है, मै निर्मल पूर्ण सच्चिदानंदस्वरूप हूँ ॥२॥

मै संगरहित शुद्ध सनातन ब्रह्म हूँ, मै अनादिसिद्धि मायासे युक्त होकर जगतका अकारण होता हूँ ॥३॥

मेरी माया का वर्णन नही हो सकता, उसमे सत्त्व, रज, तम यह तीन गुण रहते है ॥४॥

सत्वगुण शुक्लवर्ण मनुष्योंको सुख और ज्ञानक देनेवाला है और रजोगुण का रक्तवर्ण है, यह चंचल और मनुष्यों को दुःख देनेवाला है ॥५॥

तम का कृष्ण वर्ण है, यह जड और सुख दुःखसे उदासीन रहता है, इसी कारण मेरे संयोग से वह त्रिगुणात्मिका माया ॥६॥

मेरे ही अधिष्ठानसे इस प्रकार जगत को रचना करके दिखाती है, जिस प्रकार अज्ञान शुक्ति में रजत और रस्सीमें सर्प दिखाइ देता है ॥७॥

मुझसे मायाके द्वारा आकाशादिकी उत्पत्ति होती है, मुझसे प्रथम आकाश, आकाशसे वायु, वायुसे अग्नि, अग्निसे जल, जलसे पृथ्वी उत्पन्न होती है, उन्ही पांचोसे उत्पन्न हुआ यह सब देह पंचभूतात्मक कहाता है ॥८॥

पितामाताके भक्षण किये अन्नसे यह षट्कोशात्मक शरीर उत्पन्न होता है, जिसमें स्नायु अस्थि और मज्जा पिता के कोशसे उत्पन्न होते है ॥९॥

त्वचा मांस और रुधिर यह माताके वीर्यसे उत्पन्न होते है इसी प्रकार मात और पिता सम्बन्धी षट्कोशात्मक देह में माता से उत्पन्न होने वाले, पिता से उत्पन्न होनेवाले, रजसे उत्पन्न होनेवाले तथा आत्मासे उत्पन्न होनेवाले, चार पदार्थ है ॥१०॥

उसमें रक्त, मेदा, मज्जा, प्लीहा, यकृत, गुदा, ह्रदय, नाभि इत्यादि मृदु पदार्थ मातासे उत्पन्न होते है ॥११॥

श्मश्रु, लोम, केश, स्नायु,शिरा, धमनी, नाड़ी, नख, दंत, वीर्य आदि स्थिर पदार्थ पिता के संबधसे होते है ॥१२॥

पुष्टता, वर्ण, तृप्ति, बल, अवयवोंकी दृढ़ता, अलोलुपता, उत्साह इत्यादि रजसे उत्पन्न होते है ॥१३॥

इच्छा, द्वेष, सुख, दुःख, धर्म, अधर्म, भावना, प्रयत्न, ज्ञान, आयुष्य, इन्द्रिय इत्यादि यह आत्मज अर्थात आत्मासे उत्पन्न हुए कहाते है ॥१४॥

श्रोत्र, त्वचा, चक्षु, जिह्वा, और घ्राण यह पांच ज्ञानेन्द्रिय कहाते है ॥१५॥

क्रमसे ही शब्द, स्पर्श, रूप रस गन्ध, यह पांच इनके विषय है, वाणी, हाथ, पैर गुदा और उपस्थ यह पांच कर्मेन्द्रिय है ॥१६॥

बोलना, लेना, देना, चलना, मलविसर्जन और रति यह क्रमसे पांचो इन्द्रियोंके पांच कार्य और मन उभयात्मक है, मन, बुद्धि, अहंकार और चित्त यह अन्तःकरणके चार भेद है ॥१७॥१८॥

सुख और दुःख यह मनका विषय है, स्मृति भय विकल्प इत्यादि मनके कर्म है और जो निश्चय करती है उसीको बुद्धि कहते है और अहं, मम यह जो अहंकारात्मक मनकी वृत्ति है इसे ही चित्त कहते है ॥१९॥

यह अन्तःकरणभी सतोगुणादिके भेदसे तीन प्रकार का है, सत, रज, तम यह तीन गुण है, जब सतोगुण प्रधान होता है तब ॥२०॥

आस्तिक्य बुधि, स्वच्छता, धर्ममें रुचि इत्यादि सात्विक धर्म प्राप्त होते है और जब रजोगुण होता है तो काम क्रोध मद इत्यादि होते है ॥२१॥

तमोगुणकी प्रधानतामें निद्रा, आलस्य, प्रमाद, वंचना होती है, इन्द्रियों की प्रसन्नता, आरोग्य, आलस्य का न होना, यह गुण सत्त्वसे उत्पन्न होते है ॥२२॥

इन पांच महाभूतोंकी मात्रासे उत्पन्न हुआ यह देह उनके गुणों को धारण करता है, उनमें शब्द, श्रोत्र, इन्द्रिय, वाणी, कुशलता, लघुता, धैर्य ॥२३॥

और यह बल सात गुण आकाशसे इस स्थूल देहमें प्राप्त होते है, स्पर्शगुण, त्वगिन्द्रिय, उत्क्षेपण (ऊपर को फेंकना) अवक्षेपण (नीचे को फेंकना) आकुंचक(सकोड़ना) प्रसारण (फैलना) गमन (चलना) यह पांच कर्म है ॥२४॥

प्राण, अपान, व्यान, समान, उदान यह पांच प्राण है ॥२५॥

नाग, कूर्म, कृकल, देवदत्त, धनंजय यह पांच उपप्राण कहाते है, यह एकही वायुके विकारको प्राप्त होने पर दश

नाम धर लिये है ॥२६॥

उसमें प्राणपवन मुख्य है जो नाभि से लेकर कंठतक स्थित रहता है, और नासिका नाभि तथा हृदयकमलमें गमन करता है ॥२७॥

शब्द के उच्चारण निशब्द निश्वास और श्वासादिकका यही कारण है ॥२८॥

गुद, लिंग, कटि, जंघा, उदर, नाभि, कंठ, अंडकोश, जोड़ोकी संधि और जंघाओंमें अपानवायु रहता है, उसका कर्म मूत्र और पुरीषका विसर्जन (त्याग) करना है ॥२९॥

नेत्र, कर्ण, पाव के घुटने, जिह्वा तथा नासिका इन पांच स्थानों में व्यानवायु रहता है, प्राणायाम रेचक, पूरक, कुंभक इसके कर्म है ॥३०॥

समानवायु सब शरीरमें व्याप्त होकर जठराग्निके सहित बहत्तर हजार नाड़ियोंके रन्ध्रमें संचार करता है ॥३१॥

भोजन किये और पिये हुए सम्पूर्ण रसों के देहकी पुष्टिके निमित्त लेकर चरण, हाथ और अंगकी संधियोंमे उदान वायू रहता है ॥३२॥

देहका उठाना, चलाना यह इसका कर्म कहा है, त्वचा, मांस रक्त अस्थि और स्नायु इन पांच धातुओंके आश्रय नागादि पांच उपप्राण रहते है ॥३३॥

डकार, हुचकी, यह नाग पवन का कर्म, पलक खोलना, लगाना, कटाक्ष, यह कुर्मका कर्म, भूख प्यास, छींकना, कृकलका कर्म, आलस्य निद्रा जंभाई देवदत्तका कर्म और शोक और हास्य धनंजय का कर्म है ॥३४॥

अग्निके धर्म चक्षु, कृष्ण, नील, शुक्ल इत्यादि रूप भोजनका पाक, स्वतःप्रकाश, क्रोध, तीक्ष्णपन, कृशता, ओज, इन्द्रियोंका तेज, संताप, शूरता ॥३५॥

और बुद्धि यह गुण तेजसे प्राप्त होते है, और रसनेन्द्रिय, रस शीत, चिकटापन, द्रवत्व पसीना और सम्पूर्ण अवयवोंमें कोमलता यह धर्म जल से उत्पन्न होते है ॥३६॥

घ्राणेंन्द्रिय, गन्ध, स्थिरता, धैर्य, गुरुत्व यह धर्म पृथ्वीसे उत्पन्न होते है, त्वचा, रुधिर, मांस, मेदा, अस्थि, मज्जा और शुक्र यह सात धातु शरीरको धारण करते है ॥३७॥

पुरुषोंका भक्षण किया अन्न जठराग्निसे तीन भाग हो जाता है, तिसका स्थूल भाग मल, मध्यभाग मांस और सूक्ष्म भाग मन होता है, इससे मन अन्नमय कहाता है ॥३८॥

जलका स्थूलभाग मूत्र, मध्यभाग रक्त और कनिष्ठ भाग प्राण कहाता है इससे जलमय प्राण है ॥३९॥

तेजका स्थूलभाग अस्थि, मज्जा मध्यभाग और वाणी सूक्ष्मभाग है, आशय यह है कि अन्न, उदक और तेजरूप सर्व जगत है ॥४०॥

रक्तसे मांस उत्पन्न होता है,मांससे मेदा, मेदसे अस्थि और अस्थिसे मज्जा उत्पन्न होती है ॥४१॥

मांससेही नाडी उत्पन्न होती है, और मज्जासे वीर्य उत्पन्न होता है ॥४२॥

वात, पित्त, कफ यह तीन धातु शरीर में रहते है, शरीरमें दश अंजलि प्रमाण जल रहता है और नौ अञ्जलि रस अर्थात (अन्न) रहता है ॥४३॥

रक्त आठ अञ्जलि, विष्ठा सात अञ्जलि; कफ छः अञ्जलि, पित्त पांच अंजलि और मूत्र चार अञ्जलि रहता है ॥४४॥

वसा (चर्बी) तीन अंजलि, मेदा दो अञ्जलि, मज्जा एक अञ्जलि और वीर्य आधी अञ्जलि रहता है, इसी को बल कहते है ॥४५॥

शरीरमें अस्थि तीन सौ साठ, शंख, कपाल, रुचक, आस्तरण और नवक यह पांच प्रकार की अस्थि होती है ॥४६॥

शरीरमें दौ सौ दश २१० अस्थियोंकी सन्धि है, उनको रौरव प्रसर स्कन्दसेचन उलूखल ॥४७॥

समुद्ग मण्डक शंकावर्त और वायसतुण्डक यह आठ भेद अस्थियोंकी संधिके है ॥४८॥

साढे तीन करोड सब शरीरपर रोम है, और डाढीके बाल तीन लाख है, हे दशरथकुमार! इस प्रकार यह देहका रूप तुम्हरे प्रति वर्णन किया, इस देहकी समान निस्सार पदार्थ दूसरा त्रिलोकीमें कोई नही है ॥४९॥

इस देहको प्राप्त होकर पापबुद्धि पुरुष महाअभिमान करते है और अहंकाररूप पापसे मुख्यानन्द मोक्षका कुछभी उपाय

नही करते, यह महाशोककी बात है ॥५०॥

इस कारण मुमुक्षुको वैराग्य दृढ होनेकी निमित्त यह स्वरूप जानना अवश्य है ॥५१॥

इति श्री पद्मपुराणे शिवगीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे शिवराघवसंवादे देहस्वरूपनिर्णयो नाम नवमोध्यायः ॥९॥

अध्याय १०

श्रीरामचन्द्र बोले- हे भगवन् ! इस देहमें यह जीव कहां वर्तमान है यह कहांसे उत्पन्न होता है और इसका क्या स्वरूप है सो आप कहिये ॥१॥

देहान्तमें यह कहां जाता है और जाकर कहां स्थित होता है और फिर देहमें किस प्रकार आता है वा नही आता सो आप कहिये ॥२॥

श्रीभगवानु उवाच ।

श्रीभगवान बोले- हे महाभाग! बहुत अच्छी बात पूछी है जो गुप्तसे भी गुप्त है, जिसे इन्द्रादि देवता और ऋषिभी कठिनतासे नही जान सकते ॥३॥

हे रघुनन्दन! मै भी यह किसी दूसरेसे नही कहना चाहता परन्तु तुम्हारी भक्तिसे प्रसन्न होकर मै कहता हूँ ॥४॥

मै ही सत्यस्वरूप ज्ञानस्वरूप अनन्त परमानन्द परमात्मा परज्योति मायासे मोहित जीवोंको न दीखनेहारा, संसारका कारण नित्य विशुद्ध, सम्पूर्णका आत्मा, सर्वान्तर्यामी, निःसंग, क्रियारहित, सब धर्मोंसे परे मनसे भी परे हूँ ॥५॥६॥

मुझे कोई इन्द्रिय नही ग्रहण कर सकती, मै संपूर्णका ग्रहन करनेहारा हूँ, मै सम्पूर्ण लोकका ज्ञाता हूँ और मुझे कोई नही जानता ॥७॥

मै संपूर्ण विकारोंसे रहित हूँ, वाल्य यौवनादि परिणाम आदि विकारभी मुझमें नही है, जहां मनके सहित जाकर वाणी निवृत्त होजाती है ॥८॥

उस आनन्द्रब्रह्म मुझको प्राप्त होकर यह प्राणी फिर कहींसे भी भयको प्राप्त नही होता है ॥९॥

जो सम्पूर्ण प्राणियोंको मुझमें देखता है और मुझे संपूर्ण प्राणियोमें देखता है, वह निन्दारहित हो जाता है ॥१०॥

जिसको संपूर्ण (भूत) प्राणी आत्मारूप दीखते है उस सर्वत्र एकरूप देखनेवालेको शोक और मोह नही होता ॥११॥

यह संपूर्ण भूतोमें गुप्तरूप आत्मा प्रकाशित नही होता, परन्तु संपूर्णमें वर्तमान है, सूक्ष्मदशी श्रवण मनन, निदिध्योसन साधना करनेवाले पुरुषोंको अग्रबुद्धिसे दीखता है, दूसरे मनुष्योंको नही देखता है ॥१२॥

अनादि मायासे युक्त निर्विकार अविनाशी एक मै ही नामरूप रहित ब्रह्म जगत्का कर्ता परमेश्वर हूँ ॥१३॥

जिस प्रकार अविद्याके साक्षीभूत ज्ञानपर स्वप्नमें त्रिलोकी की कल्पना की जाती है इसी प्रकार मुझमें यह सब जगत् उत्पन्न हो दीखता. स्थिति पाता और लय हो जाता है ॥१४॥

अनेक प्रकारकी अविद्याके आश्रय होकर जीवरूपसे भी मै ही निवास करता हूँ, पांच कर्मेन्द्रिय और पांच ज्ञानेन्द्रिय, मन, बुद्धि, अहंकार, चित्त यह चारो ॥१५॥

पंचप्राण यह सब मिलकर लिंगशरीरको उत्पन्न करते है, उसी लिंगशरीर में अविद्यायुक्त यह चैतन्य का प्रतिबिम्ब पडता है, उसीको व्यवहारमें जीव क्षेत्रज्ञ और पुरुष कहते है ॥१६॥१७॥

वही जीव अनादि कालसे पुण्य पापसे निर्मित हुए स्थावर जंगमादि देहोंमे वास कर शुभाशुभ कर्मका फल भोक्ता है उसीको परलोकगति होती, तथा वही जाग्रत् स्वप्न सुषुप्ति इन अवस्थाओंका भोक्ता है ॥१८॥

जैसे दर्पणके मलिन होनेमें मुखभी मलीन देखता है, इसी प्रकार अन्तःकरणके दोषोंसे आत्मा विकारी दीखता है ॥१९॥

अंतःकरण और जीव इन दोनोंके परस्पर अध्यासके कारण और एकभावका अभिमान करनेसे परमात्माभी दुःखीसा प्रतीत होता है, वास्तव में सब दुःखका धर्म अन्तःकरणमें है जीवमें नही परन्तु जिस प्रकार चन्द्रमाका प्रतिबिम्ब जलमे पडनेसे वह जलके चलायमान होनेसे चलायमान विदित होता है इसी प्रकार अन्तःकरणके सुख दुःख होनेसे वही जीवमें

आरोपण किये जाते है ॥२०॥

जिस प्रकार कि मारवाडदेशमें दुपहरके समय सूर्यकी किरण रेतमें पडकर जलरूपसे प्रतीत होती है, उसमें केवल अज्ञानसे जाना जाता है, वो जलरूप नही, वास्तवमें संतापही करनेवाली है ॥२१॥

इसी प्रकार आत्माभी निर्लेप है, परन्तु वह मूढ बुद्धिवालोंको अविद्या और अपने दोषके कारण कर्ता भोक्ता प्रतीत होता है ॥२२॥

इस अन्नमय पिंडके स्थूल देहमें हृदय के विषय जीव स्थित रहता है और नखके अग्रभाग से लेकर शिखापर्यन्त व्याप्त हो रहा है, सो तू सावधान होकर सुन, वही यह जीव मै 'मनुष्य' मै 'ब्राह्मण' इत्यादि अभिमान करता हुआ इस मांसपिंडमें स्थित है ॥२३॥

नाभिसे ऊप्र और कंठ से नीचे अवकाशके स्थान को व्याप्त करके सदा स्थित रहता है, इतनेही स्थानके बीचमें हृदय है जिसका स्वरूप डंडी सहित कमलकलीके समान है ॥२४॥

उसका मुख नीचेको है, उसमें सूक्ष्म और सुन्दर एक छिद्र है, उसीको दहराकाश कहते है, उसमें जीव रहता है ॥२५॥

केशके अग्रभाग का सौवाँ भागकर फिर उसका भी सौवाँ भाग करके जो प्रमाण किया जाय वही सूक्ष्मता जीवकी जाननी वस्तुतः तो जीवके स्वरूपका प्रमाण नही है कि ऐसा है, और इतना है ॥२६॥

जिस प्रकार कदंबके फूलको मध्ययायी चारों और केशर होती है, इसी प्रकारसे हृदय स्थानसे सहस्त्रों नाडी निर्गत हुई है जो शरीर भरमें व्याप्त है ॥२७॥

वे हित और बलको देती है इस कारण उनकी हित संज्ञा है योगियोंने उन नाडियों की संख्या बहत्तर सहस्त्र कही है ॥ २८॥

जिस प्रकार सूर्यसे किरण निर्गत होती है, इसी प्रकारसे वे नाडी हृदयसे निकली है, उनमें एकसौ एक मुख्यनाडियोंने संपूर्ण शरीरको वेष्टित कर दिया है ॥२९॥

और प्रत्येक इन्द्रियोमें दश दश नाडी है उन्हीके द्वारा विषयोंका अनुभव होता है, यह नाडिही सुख दुःख जाग्रत् स्वप्नादिके साक्षातका कारण है ॥३०॥

जिस प्रकार नदी जलको बहाती है इसी प्रकार नाडी सुख दुःखरूपकर्म फलको बहाती है । इन १०१ नाडियोंमें से एक नाडी ऊपर अनन्तनाम बहाती है ब्रह्मरंध्र तक पहुँच गई है ॥३१॥

जो अनन्त अर्थात् सुषुम्नानाम नाडी है उसमे प्राप्त होकर यह जीव मुक्त हो जाता है, जिस समय वह अन्तःकरण कामादि दोषशून्य होता है, उस समय यत्न करनेसे योगीका आत्मा इस नाडीमें प्राप्त होता है, परन्तु उस समय सद्गुरुकी कृपा और पूर्णज्ञानकी आवश्यकता है, कारण कि, ज्ञानद्वारा मुक्ति प्राप्त होती है ॥३२॥

जिस प्रकारसे राहु अदृश्य रहकर भी चन्द्रमण्डलमें दीखता है । इसी प्रकार सर्वत्र रहनेवाला आत्मा लिंग देहमें ही प्रतीत होता है ॥३३॥

जिस प्रकार घटके ले जानेसे घटाकाश भी लेकर जाया जाता है, इसी प्रकार सर्वत्र व्यापकभी जीवात्मा लिंगदेहमें ही प्रतीत होता है ॥३४॥

यद्यपि वह सर्वत्र पूर्ण और निश्चल है, परन्तु वह जाग्रत् अवस्थामें घटादि पदार्थोंका चैतन्य प्रतिबिंबयुक्त होनेसे अन्तःकरण वृत्तिसे व्याप्त होकर चंचलसा दीखता है ॥३५॥

जिस प्रकारसे सूर्य दशो दिशाओंको व्याप्त करता है इसी प्रकार निष्क्रिय और सर्व पदार्थोंमें व्याप्त लिंगदेहके सम्बन्धसे उत्पन्न हुई अन्तःकरणकी वृत्ति नाडियो द्वारा बाहर जाकर विषयोंमें प्राप्त हो उन्हे प्रकाश करती है ॥३६॥

अपने किये उन उन कर्मोके अनुसार जाग्रतादि अवस्थामें सुख दुःखका साक्षात्कार जीव करता रहता है,सम्पूर्ण वृत्ति लिंगशरीर से उठती है, जब तक मोक्ष न हो तब तक लिंग शरीरका नाश नही होता ॥३७॥

जिस समय ज्ञानद्वारा जीव और ब्रह्मका भेद मिट जायगा और अविद्यासहित इस लिंग शरीरका नाश हो जायगा उस समय केवल आत्माका अनुभवमात्र 'अहं ब्रह्मास्मि' इस स्वरूपमें स्थिर होने से ही मुक्त होता है ॥३८॥

जिस प्रकार घटके उत्पन्न होते ही घटाकाश उसमे प्राप्त हो जाता है और उसके नष्ट होनेसे वह अपने स्वरूपमें अवस्थान करता है, इसी प्रकार मायाके नष्ट होनेसे आत्मा अपने स्वरूपमें अवस्थान करता है ॥३९॥

जब जाग्रत् अवस्थामें भोग देनेवाले कर्मोका क्षय होकर स्वप्नकालमे भोग देनेवाले कर्म जाग्रत समयके देह गेहादि विषयके साक्षात करनेवाले ज्ञानको छिपाकर जब जाग्रत होते है तब (यह जीव क्रिडा करो) इस प्रकारसे परमेश्वरकी इच्छासे पूर्व अनुभव किया हुआ स्वप्नसमयके विषय का जाग्रत होनेपर यह मायावी अविद्योपाधि जीव माया कीनिद्रा के योगसे जाग्रत अवस्थामें भी स्वप्नसे भिन्नस्वरूप अवस्थाकी ओर देखता है ॥४०॥४१॥

घटपटादि विषय, बुद्धि आदि इन्द्रिय और स्वप्नसमयके भोग देनेवाले पदार्थ की समान सब सृष्टि अन्तःकरणाने कल्पना करी है, जिस प्रकार इकला मनुष्य स्वप्न में अनेक मनुष्य देखता, भोग भोगता और संसार की सब रचना भिन्न भिन्न जानता है, यथार्थ में एकही है, इसी प्रकार वास्तविक आत्मा है, परन्तु अन्तःकरणकी कल्पना से यह जगत् अनेक भावसे दीखता है ॥४२॥

इन सबको देखनेहारा स्वयंज्योति आत्मा साक्षीरूपसे सबमे वर्तमान है ॥४३॥

इस अवस्थामें अन्तःकरणादि सर्व पदार्थों की वासना भावनासे की हुई असत्य होनेसे वह वासनारूपी ही है और परमात्मा उसही स्थानमें वासनामात्र से साक्षी है ॥४४॥

जिस प्रकार जाग्रत् अवस्थामें कर्ता कर्म किया इत्यादि संपूर्ण कारणोंसे युक्त व्यवहार चलता है इसी प्रकार पूर्व जन्मके किये कर्मोकी प्रेरणासे वासनारूप प्रपंच है परन्तु जाग्रत् अवस्थामें प्रपंचका व्यवहार समर्थ होता है और स्वप्न अवस्थामें कल्पित है यही इसमें भेद है ॥४५॥

सम्पूर्ण बुद्धि वृत्तिका साक्षी आत्मा स्वयंही प्रकाश करता है, उस साक्षीका जो वासनामात्र साक्षीपना है उसे स्वप्न कहते है ॥४६॥

बाल्य अवस्थामें जाग्रत् जो कर्म स्तनपान कन्दुकक्रीडा आदि किये है, उस समय उसीकी वासना हृदयमें प्रबल रहती है, इस कारण वे ही स्वप्न दीखते है ॥४७॥

और तरुण अवस्थामें इन्द्रिय अपने व्यापारमें कुशल हो जाती है यह प्राणी अनेक व्यापारमें व्यग्र हो जाता है, अध्ययन, कृषि, व्यापार आदिकी वासना हृदयमें अत्यन्त दृढ हो जाती है, इस कारण तद्रूप ही स्वप्न देखता है ॥४८॥

और जो वृद्धावस्थामें परलोक जानेके निमित्त दान धर्म विद्यादि दान ऐसे उत्तम कर्म करते है उनके हृदयमे यह वासना दृढ हो जाती है तो प्रायः यहभी इसी प्रकार के स्वप्न देखा करते है, कि हमने दान किया, इस प्रकार लोककी प्राप्ति हुई ॥४९॥

जिस प्रकारसे श्येन पक्षी आकाशमें भ्रमण करते २ जब थक जाता है, तब विश्रामका और कोई उपाय नही देखकर निज पंखो को सकोडकर अपने घोसलेंमे विश्राम लेता है ॥५०॥

इसी प्रकार जाग्रत और स्वप्न अवस्थामें विचरनेसे जब आत्मा श्रांत होता है तब संपूर्ण इन्द्रियोंके शिथिल होने से सब साधनाओंको लयकर देता है अर्थात संपूर्ण इन्द्रियोंके व्यापारको समाप्तकर निद्रित हो जाता है ॥५१॥

नाडियोंके मार्गसे इन्द्रियकी वासना को आकर्षणकर जाग्रत और स्वप्न अवस्थाके सब कार्य समाप्तकर आत्मा लीन हो जाता है ॥५२॥

जिस समय यह मायासे आच्छादित चैतन्य अव्याकृत स्वरूपमें लय होता है, उस समय सम्पूर्ण प्रपंच लय हो जाता है, परन्तु यह लय आत्यंतिक नही है, इसमें केवल कार्यरूपका नाश होता है कारण रूपवासना बनी रहती है ॥५३॥

जिस पुरुषकी किसी स्त्री को अत्यंत इच्छा हो, और वह उसे प्राप्त हो जाय उसके सम्भोगसे जो सुख हो जाता है उसकी सीमा है परन्तु उससे कही अधिक सुख निद्रा अवस्थामें जीवको आनन्दमय कोशमें प्राप्त होनेसे होता है जब जीवको ब्राह्य विषयका ज्ञान नही होता, वह अन्तर अर्थात् मोक्षकी अवस्थाकी समान जिसमें विषयवासना अत्यन्त निवृत्त होती है, निवृत्त वासनावाला भी नही होता ॥५४॥

निद्रावस्थामें जीवात्मा जब ईश्वरको प्राप्त होता है तब जाग्रत आदि अवस्थामें जैसे ईश्वर से भिन्न रहता है तैसा भी भिन्न रहता है, तब भी भेद नही जाता ऐसा होनेसे ही वह उस समय दुःख रहित होता है, क्योकि कारणात्मामें उसका साम्य माना जाता है एकत्व पाता है, इस कारण औपचारिक है ॥५५॥

जो भी उस अवस्थामें अविद्याकी सूक्ष्मत्व वृत्ति आनेसे जैसे सुख अनुभव करता है उस सुखको जैसे, 'सुखमहमस्वाप्सम् अर्थात मै सुखसे सोआ' नकिंचिदवेदिषम' और दूसरा कुछ भी न जाना केवल अज्ञानका ही अनुभव किया ॥५६॥

परन्तु यह अज्ञानभी साक्षी आदिकी वृत्तिसे अनुभव किया जाता है, कि सुखसे सोया यदि साक्षी न हो तो सुखसे सोनेकी स्मृति किसी प्रकार नही हो सकती, क्योंकी गाढ निद्रामें सोते समय तो उसे सुखका अनुभव होता नही, उसके पश्चात जाग्रत होकर साक्षीके द्वारा जानता है ॥५७॥

जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति यह तीन अवस्था जैसी इस लोककी है तैसी देवलोक की है, सुषुप्तिके अन्तमें जब जाग्रत अवस्था आती है तो अपने कारणरूप जीवके प्रारब्धके कर्मसे फिर इन्द्रिये इस प्रकार जाग उठती है जिस प्रकार अग्निसे विस्फुलिंग (चिनगारियां) उठने लगती है इसी प्रकार सूक्ष्मरूपमें लीन हुई इन्द्रियमे उठती है ॥५८॥

जिस प्रकार जलभरा हुआ घडा जलमें डुबादो और यदि उसे फिर निकालो तो वह उस जल से भराही आताहै इसी प्रकार से यह जीवात्मा इन्द्रिय आदि सहित कारणमें लयको प्राप्त हो उन इन्द्रियों सहित ही जाग्रत अवस्थाको प्राप्त होता है ॥५९॥

विज्ञानात्मा (जीव) कारणात्मा (ईश्वर) यह दोनों वास्तवमें एकही रूप है परन्तु अविद्याके प्रपंच से उनमें भेद प्रतीत होता है, जब यह अविद्या नष्ट होजाय तो ऐसा नही होता उस समय दोनों एकरूप हो जाते है ॥६०॥

जिस प्रकार से एक ही सूर्य जलादि पदार्थों से प्रतिबिंबित होनेसे अनेकरूप दीखता है और जलके चलायमान होनेसे सूर्यादिमें ही चञ्चलता प्रतीत होती है, इसी प्रकार कूटस्थ एक (जीवात्मा) ईश्वर एकही है, और अनेक देहोंमे प्रतिबिम्बित जीवरूपसे प्रविष्ट होकर अनेकरूप और गमनागमनादिरूपसे दीखता है ॥६१॥

आत्मा देहादि उपाधिसे रहित स्वप्रकाश है, परन्तु स्वरूपकी स्मृति लोप करनेवाली मायाने विस्मृति को प्राप्त कर दिया है, इससे सब प्रपंच इस में अज्ञानसे विदित होता है, कारण कि, यह माया तो (अघटितघटनापटीयसी) न होनेवाली बातको भी करके दिखा देती है । माया के योग से आत्मामें कितने ही विरुद्ध कर्म दीखे परन्तु मायाके दूर होते ही जीव ईश्वर और निर्विकार हो जाता है, हे दशरथकुमार! यह तुमसे जीवका स्वरूप वर्णन किया ॥६२॥६३॥

इति श्रीपद्मपुराणे उपरिभागे शिवगीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे शिवराघवसंवादे जीवस्वरूपकथनं नाम दशमोऽध्यायः ॥१०॥

अध्याय ११

जीवकी देहान्तरगरि ओर परलोकगति लिंग देहके कारण होती है यह बात संक्षेपसे कहकर अब विस्तारसे वर्णन करते हुए श्रीभगवान बोले-हे नृपश्रेष्ठ! उस जीवकी देहान्तरगति और परलोकगति मै तुमसे वर्णन करता हूं, सावधान होकर सुनो ॥१॥

इस स्थूलदेहसे जो कुछ भोजन किया जाता और पिया जाता है उसीके कारण लिंग और स्थूल देह में सम्बन्ध उत्पन्न होता है, उसीसे जीवन धारण होता है ॥२॥

जिस समय व्याधि वा जरा अवस्थासे कफ प्रबल होता है तब जाठरानल के मंद होने से भोजन किया हुआ अन्न अच्छी तरह नही पचता है ॥३॥

जब भोजन किये हुए रसके न प्राप्त होनेसे शीघ्र ही धातु सूख जाते है, और भोजन किये तथा पान किए रससे ही शरीरमें जाठराग्निके दीप्त रहते जो अन्न भक्षण किया जाता है, वह रसरूप होकर शरीर को पुष्ट करता है ॥४॥

उस समय प्राणवायु वह सम्पूर्ण रस लेकर सब धातुओं में पहुचांता है इसी कारण से यह समान वायु कहाता है और वृद्धावस्थामें वह रस उत्पन्न नही होता इस कारण शरीरके बंधन जो दृढ़तासे परस्पर संघट्ट है शिथिल हो जाते है ॥५॥

जिस प्रकार कि, आम्र फल पककर अपने भारसे आपही शीघ्र पतित हो जाता है, इसी प्रकार शरीरके शिथिल होनेसे लिंगशरीरका स्थूल से वियोग हो जाता है ॥६॥

सम्पूर्ण इन्द्रियोकी वासना, आध्यात्मिक-जीवसम्बन्धी बुद्धि और ज्ञानेन्द्रियादि आधिभौतिक-प्राप्त होनेवाले देहके कारणभूत सूक्ष्म रूपवाले कर्म यह तीनों आकर्षित होकर हृदयकमलमें एकता को प्राप्त होते है ॥७॥

तब मुख्य प्राणवायु शेष नौ वायुओंसे संयुक्त होकर ऊर्ध्वश्वासरूपी हो जाता है, और फिर वे सब एक होकर जीवात्मा से संयुक्त होते है ॥८॥

विद्या, कर्म और वासनासे युक्त हो यह जीव अपने कर्मसे नाडीमार्गका आश्रयकरके नेत्रमार्ग अथवा ब्रह्मरंध्रके द्वारा बहिर्गत होता है ॥९॥

जिस प्रकारसे घडेको इस देशसे दूसरे स्थानमें ले जाते है परन्तु वह आकाशासे पूर्ण हो जाता है, जहां घट जायगा उसी उसी स्थानमें घटाकाशभी जायगा इसी प्रकार से जहाँ जहाँ लिंगशरीर गमन करता है उसी उसी स्थानमें जीव होता है ॥१०॥११॥

और कर्मानुसार दूसरे देहको प्राप्त होता है, जिस प्रकार नदीका मच्छ कभी इस किनारे और कभी दूसरे किनारे जाता है, इसी प्रकारसे यह मोक्ष न होनेतक अनेक योनियोंमे भ्रमण करता रहता है ॥१२॥

जो पापी है उनको यमदूत ले जाते है यह यातना देहका जो नरक दुःख भोगनेके लिये दी जाती है, उसको आश्रय करके केवल नरकों ही को भोगता है ॥१३॥

और जिन्होंने सदा इष्ट (यज्ञादि) पूत- (वापीकूपतडागादि निर्माण करना) कर्म किये है, वह पितृलोकको गमन करते है, यमदूत उन्हे पितृलोकको प्राप्त करते है ॥१४॥

उस मार्गका क्रम यह है कि, धूम फिर रात्रिअभिमानी देवता के निकट फिर कृष्णपक्षाभिमानी देवता के निकट फिर दक्षिणायन अभिमानी देवता के निकट फिर वहांसे पितृलोकमें जाता है, पितृलोकसे आगे चन्द्रलोकको प्राप्त हो दिव्य देह पाकर महालक्ष्मीका भोग करता है ॥१५॥

वहां यह चन्द्रमाकीही समान होकर कर्मकी फलकी अवधितक चन्द्रलोकमें वास करता है, जब पुण्य फल समाप्त हो जाता है तो जिस क्रमसे इस लोकमें गमन हुआ था उसी क्रमसे इस लोकमें फिर आता है ॥१६॥

चन्द्रलोकसे चलते समय उस शरीरको छोड यह आकाशरूप होकर आकाशसे वायुमें और वायुसे जलमें आता है ॥१७॥

जलसे मेघोमें प्राप्त होकर फिर यह वर्षाद्वारा पृथ्वीपर पतित होता है, फिर अनेक कर्मके वश होकर भक्षण योग्य अन्नमें प्राप्त होता है ॥१८॥

और कितने एक शरीरप्राप्तिके निमित्त मनुष्यादि योनिमें प्राप्त होते है और कितने एक कर्म और ज्ञानके तारतम्यसेस्थावरत्व को प्राप्त हो जाते है ॥१९॥

जो जीव अन्नमें प्राप्त हुए है, उस अन्नको स्त्री पुरुष भक्षण करते है उससे स्त्री और पुरुषोंका रज और शुक्र होकर उन दोनोंके संयोगसे वह गर्भरूप धारण करते है ॥२०॥

यही जीव कर्मके अनुसार स्त्री, पुरुष और नपुंसक होता है, इस प्रकारसे इस जीवकी इस लोकमें गति और परलोकगति होती है अब इसकी मुक्तिका वर्णन करता हूँ ॥२१॥

जो शमदमादिसाधनसम्पन्न सदा अपने वर्णाश्रमके कर्म करते और फलकी आकांक्षा न करके ईश्वरापण कर देते है वह मनुष्य देवयानमार्गसे ब्रह्मलोकपर्यन्त गमन करते है ॥२२॥

वह प्रथम ज्योतिमें प्राप्त हो पीछे दिन और फिर शुक्लपक्षाभिमानी देवताके निकट जाता है फिर उत्तरायणको प्राप्त होकर संवत्सरके निकट गमन करता है ॥२३॥

फिर सूर्यलोकको प्राप्त होता है, चन्द्रलोकसे भी ऊपर विद्युत लोकको प्राप्त होता है फिर उससे आगे कोई एक पुरुष दिव्य देहको प्राप्त हो ब्रह्मलोकको जाता है, और वहांसे यहां नही आता है ॥२४॥

ब्रह्मलोकमें प्राप्त होकर दिव्य देहके आश्रित हो यह जीव रहता है, उस दिव्य देहसे ब्रह्मलोकमें अनेक प्रकारके मन इच्छित भोगोंको भोगता हुआ बहुत कालतक उस स्थानमें वासकर ब्रह्माके साथ मुक्त हो जाता है है उसकी फिर आवृत्ति नही होती ॥२५॥२६॥

जिस प्रकारसे स्वप्नमें देखी हुई सृष्टि जाग्रत होतेही लय हो जाती है इसी प्रकारसे ब्रह्मज्ञान प्राप्त होनेसे यह सब सृष्टि लय हो जाती है और जिन्होंने केवल पापही किये है और उपासना तथा पुण्यकर्मसे रहित उनकी तीसरी गति अर्थात नरक होता है ॥२७॥२८॥

वे अनेक प्रकारके रौरव, महारौरव, घोर नरकोंको भोगकर पीछे शेष कर्मोके अनुसार क्षुद्र जन्तुओंके शरीरको प्राप्त होते है ॥२९॥

पृथ्वीमें लीख, मच्छर, डांश आदिका जन्म लेता है, इस प्रकारसे जीवकी गति तुमसे वर्णन की अब और क्या सुनने की इच्छा है ॥३०॥

श्रीराम उवाच ।

रामचन्द्र बोले, हे भगवन् ! आपने उपासना और कर्मफलसे अनेक प्रकारसे चन्द्रलोक और ब्रह्मलोककी प्राप्ति वर्णन की सो यथार्थ है ॥३१॥

गन्धर्वादि लोक और इन्द्रादि लोकोंमे किस प्रकारसे भोग प्राप्त होते है कोई देवता कोई इन्द्र और कोई गन्धर्व होता है ॥३२॥

हे शंकर! यह कर्मका फल है वा उपासनाका फल है सो कृपा करके वर्णन किजिये, इसमें मुझे बड़ा सन्देह है ॥३३॥

श्रीभगवानुवाच ।

शिवजी बोले, उपासना और शुभकर्म, इन दोनोंहीके योगसे फल प्राप्त होता है, वह हम वर्णन करते है, जो मनुष्य युवा सुन्दर शूर नीरोग और बलवान हो ॥३४॥

वह यदि सप्तद्वीपयुक्त पृथ्वीको निष्कंटक भोग करता हो उसका नाम मानुषानन्द है यह आनन्द साधारण मनुष्योको देह प्राप्त होनेवाले आनन्दसे सौ गुणा अधिक है ॥३५॥

जो मनुष्य तप आदिसे संयुक्त हो वह गन्धर्व होता है मनुष्योंके आनन्दसे सौगुणा आनन्द गन्धर्वोको प्राप्त होता है ॥

३६॥

इसी प्रकारसे ऊपर ऊपर पितृलोक देवादिलोकमें उत्तरोत्तर सौगुणा आनन्द बढता जाता है ॥३७॥

तिनमें भी देवता, देवतासे इन्द्र, इन्द्रसे बृहस्पति, बृहस्पतिसे ब्रह्मदेव, ब्रह्मदेवसे ब्रह्मानंद उत्तरोत्तर सौ २ गुणा अधिक है ॥३८॥

ज्ञानके आनंदसे अधिक आनंद तो देवलोकमें भी नही है, कारण कि, ज्ञानीको किस वस्तुकी अपेक्षा नही है कहींसे भय नहीं है, जो ब्राह्मण क्षत्रियादि वेदवेदांगके पारगामी निष्पाप और निष्काम है, और भगवत् की उपासना करनेवाले है ॥ ३९॥

वह अनुक्रमसे उत्तर उत्तर आनंदको प्राप्त होते है परन्तु हे दशरथकुमार! यह जो कुछ आनंद है सौ आत्मज्ञानकी बराबर नही है इससे आत्मज्ञानका अनुष्ठान करना उचित है ॥४०॥

जो ब्राह्मण ब्रह्मदेवता है उसे कर्मउपासनासे कुछ प्रयोजन नही है न उसकी कर्मसे कुछ वृद्धि और न करनेसे कुछ हानि भी नही, जो शास्त्रने विहित कर्मोका विधान और निषिध कर्मोका निषेध किया है, वह केवल जब तक ज्ञान नही तभीतक है, ज्ञान होने पर कुछ नही, और यदि ज्ञानी लोकस्थापनके निमित्त करे तो भी कुछ हानि नही ॥४१॥

इस कारणसे ज्ञानवान ब्राह्मण सबसे श्रेष्ठ है, जो कोई पुण्यवान ज्ञानी जानकर कर्म करता है उसके पुण्यका फल अक्षय होता है ॥४२॥

जिस फलको मनुष्य करोड ब्राह्मणके भोजन करानेस प्राप्त होता है वह फल एक ज्ञानीके भोजन कराने से प्राप्त होजाता है ॥४३॥

जो वस्तु ज्ञानिजनों को दिया जाता है वह करोडगुण मिलती है और जो मनुष्योंमें अधम ज्ञानीकी निन्दा करता है वह क्षयरोगको प्राप्त होकर मृतक हो जाता है कारण कि, ज्ञानी साक्षात् ईश्वर है ॥४४॥

हे रामचन्द्र! जो निर्गुण को कठिन समझते है वह पहले सगुण उपासना करे, किसीभी सगुण उपासना करनेवाले की अधोगति नही होती, इस कारण सगुणरूपकी ही उपासना करके सुखी हो ॥४५॥

इति श्रीपद्मपुराणे उपरिभागे शिवगीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे शिवराघवसंवादे जीवगत्यादिनिरूपणं नामैकादशोऽध्यायः ॥११॥

अध्याय १२

श्रीरामचंद्र बोले, दे देवदेव! महेश्वर आपको नमस्कार है आप उपासना की विधि और उसका देशकाल वर्णन कीजिये, कि किस समय किस प्रकार उपासना की जाय ॥१॥

ईश्वर उवाच ।

हे भगवन् ! हमारे ऊपर आपकी कृपा होय तो उपासनाका अंग और नियम कहो, फिर शिवजी बोले हे राम! मै तुमसे उपासनाकी विधि और उसका देश काल कहता हूँ तुम मन लगाकर सुनो । जितने देवता है यह सब मेरे ही रूप है वास्तवमें मुझसे भिन्न नही ॥२॥३॥

जो दूसरे देवताओंके भक्त है, और श्रद्धापूर्वक उनका पूजन करते है, हे राजन!! वे पुरुष मेआ ही भेदबुद्धिसे यजन करने वाले है ॥४॥

जिस कारण कि, इस सम्पूर्ण संसारमें मेरे सिवाय और कुछ नही है, इसीसे मै सब क्रियाका भोक्ता और सबका फल देनेवाला हूँ ॥५॥

जो पुरुष विष्णु, शिव, गणेशादि जिस भावसे मेरी उपासना करते है, उसी भावनाके अनुसार उसी देवताके रूपसे मै उन्हे वांछित फल देता हूँ ॥६॥

विधिसे अविधिसे किसी प्रकारसे हो जो मेरी उपासना करते है उनको मै प्रसन्न होकर फल देता हूँ, इसमें कोई संदेह नही ॥७॥

यद्यपि वह दुराचारी है परन्तु वह अनन्य होकर मेरा भजन करता है उस पुरुषको साधुही मानना चाहिये, और पुण्यवान है यह भक्तिकी महिमा दिखाई है परन्तु यह निश्चय जानना चाहिये कि अनन्यभक्तिवाला किसी प्रकार

दुराचारी नही हो सकता, कारण कि अनन्य भक्तिका और स्थानमें मन नही जाता ॥८॥

जो एकनिष्ठबुद्धि होकर जीवात्मा परमात्माको एकही रूप जानता है, अर्थात् जीवरूपभी मेरेको ही जानता है और अनन्य बुद्धिसे मेरा भजन करता है उसको पाप स्पर्श नही करता बहुत क्या उसे ब्रह्महत्याभी स्पर्श नही करती ॥९॥

उपासनाकी विधि चार प्रकारकी है संपत्, आरोप, संवर्ग और अध्यास ॥१०॥

अल्प वस्तुकाभी गुणयोगसे मन की वृत्तिसे अनन्त गुणोंकी भावनासे चिंतन करना जैसे कि, मूर्तिमें अनंत गुणविशिष्ट शिव तथा विष्णुका ध्यान करना इसका नाम संपत है ॥११॥

एक देश वा अंगमें सम्पूर्ण उपास्य वस्तु का आरोप करके जो उपासना करनी है उसे आरोप कहते है, जैसे ओंकारकी उद्गीथसाम रूप से उपासना की जाती है ॥१२॥

आरोप और अध्यास इनका स्वरूप बहुधा एकसा है, भेद इतनाही है कि बुद्धिपूर्वक किसी एक वस्तुमें विवक्षित धर्मका आरोप करके उसकी उपासना करना, जैसे स्त्रीपर अग्निका आरोप (अर्थात्) स्त्रीको अग्निरूप मानना यह अभ्यास है ॥१३॥

कर्मयोगसे उपासना करने का नाम संवर्ग है अर्थात् सम्पूर्ण भूतोंको उपासनाके योगसे वशमें करना, जैसे प्रलय कालमें संवर्त नामक, वायु अपनी शक्तिसे सब भूतोंको वश करती है ॥१४॥

गुरुसे प्राप्त हुए ज्ञानसे देवतामें और अपनेमें भेद न मानना और अन्तःकरणसे देवताके समीप प्राप्त होना और अन्तःकरणसे ही सब पूजन कल्पित करना, इसका नाम अंतरंग उपासना है, और इसके उपरांत दूसरी विधिसे बहिरंग उपासना कहाती है ॥१५॥

तब इस प्रकार किसी की उपासना करनी और कहांतक करनी किसी भी देवताकी उपासना करते हुए, ध्यानसे उस देवताके स्वरूपका जो ज्ञान होता है उस ज्ञानको विजातीय ज्ञानसे शिवका ध्यान करते हुए कामिनी के ध्यानसे-मध्यमें विच्छिन्न न होकर व्यवधानरहित ज्ञानपरम्परासे-निदिध्यासना करके ध्यानयोग्य देवताओंमें अपनी बुद्धि लगाकर एकरूपका साक्षात् होने तक उपासना करता रहे ॥१६॥

संपदादि जो चार उपासना वर्णन की है, यह दृढ बुद्धिकी उपासना तथा उपासनाकी परम अवधि है और सगुण उपासना इस प्रकार है कि, मूर्तिकी उपासना करनेके समय उसके प्रत्येक अंगोमें अक्षय दृष्टि लगाकर उपासना करनी, इस उपासनेके अंगोको श्रवण करो ॥१७॥

उपासनोंके योग्य देशोंका कथन करते है कि, तीर्थ और क्षेत्रादिकोमें ही जानेसे उपासना होगी यह विचार न करे, क्षेत्रादिकोमें जानेकी श्रद्धा त्याग दे, और जहां अपना चित्त स्वच्छ और एकाग्रतायुक्त होय तहां ही सुखसे बैठकर उपासना करे ॥१८॥

कम्बल मृदुकपास वस्त्र अथवा मृगचर्मपर स्थित होकर एकान्त देशमें स्थितहो समान ग्रीवा और शरीरको सरल करेंगे ॥१९॥

विधिपुर्वक भस्म धारणकर और सम्पूर्ण इन्द्रियोंको रोककर तथा भक्तिपूर्वक अपने गुरुको प्रणाम करके, ज्ञानशास्त्रद्वारा ज्ञानकी प्राप्तिके निमित्त भक्तिसे प्राणायाम करे ॥२०॥

जिसका अन्तःकरण मूढ और विवेकशून्य है उसकी इन्द्रियें दुष्ट घोडोंकी समान है, अर्थात् जैसे दुष्ट घोड़ा सारथीके वशमें नही आता तैसे दुष्ट इन्द्रिय वाले उन्हे वश नही कर सकते ॥२१॥

और जो ज्ञानसम्पन्न है उनके यत्न करने से सम्पूर्ण इन्द्रिये मनके सहित वशमें हो जाती है, जिस प्रकार सुशिक्षित अश्व सारथीके वशमें हो जाता है ॥२२॥

और जो विवेकशून्य चंचलचित्त बाह्य और अन्तर शोचसे हीन और अनुभवज्ञानरहित है वे उस स्थानको नही प्राप्त होते परन्तु निरंतर संसारमें ही भ्रमण करते है ॥२३॥

और जो ज्ञानी स्थिरचित्त बाह्य आभ्यन्तर पवित्रतासे युक्त है वे उस स्थानको प्राप्त होते है जहांसे फिर आना नही होता (न स पुनरावर्तते २) यह श्रुतिमें लिखा है ॥२४॥

जिसका विज्ञानरूपी सारथी मनरूपी लगाम धारण किये है, इन्द्रियरूपी घोड़े जुते शरीररूपी रथमे जो बैठा है वह संसाररूपी मार्गसे पारहो परमपद (मोक्ष) स्थानपर पहुँच जाता है ॥२५॥

हृदयकमल कामादिदोष रहित शमदमादिगुणसम्पन्न स्वच्छ और शोकरहित करके उसमें मेरा ध्यान करना उचित है ॥२६॥

जो अचिन्त्यस्वरूप सीमारहित है, जिससे श्रेष्ठ कोई दूसरा नही है, जो नाशरहित कल्याणस्वरूप आदिअन्तशून्य प्रशांत और सबका कारण है ॥२७॥

सर्वव्यापक सच्चिदानन्दस्वरूप रूपरहित उत्पत्तिशून्य आश्रय युक्त मुझ ब्रह्मरूपको शुद्ध स्फटिक मणिकी समान शरीर और अर्धांगमे पार्वतीको धारण किये ॥२८॥

व्याघ्रचर्म ओढे, नीलकंठ, त्रिलोचन, जटाजूट धारण किये चन्द्रमा शिरपर धरे, नागोंका यज्ञोपवीत पहरे ॥२९॥

व्याघ्रचर्मकाही उत्तरीय (डुपट्ट) ओढे, सर्वश्रेष्ठ भक्तोंके अभयदाता, पीठकी ओरके ऊँचे दोनों हाथोंमें मृग और परशु धारण किये, सब अंग मे विभूति लगाये, तथा सम्पूर्ण आभूषणोंसे भूषित ॥३०॥

इस प्रकारसे आत्माकी अरणी और प्रणवको उत्तर अरणी करके उसका मथन करता हुआ मेरा ऊपर कहे अनुसार ध्यान करे तौ यह मेरा साक्षात्कार पाता है, जब यज्ञको करते है तब अग्निके निमित्त खैर वा शमीकी दो लकडी ले ऊपर नीचे रख अग्निके निमित्त उसे मथते है ॥३१॥

वेदवचन और शास्त्रोंके वचनसे मुझे कोई नही पा सकता परन्तु जो एकाग्रचित्तसे सदैव मेरा ध्यान करता है, मै उसे प्राप्त होता हूँ और उसे फिर त्याग नही करता ॥३२॥

जो पापसे पराङ्मुख नही जिसकी तृष्णा शान्त नही श्रवण मनन निदिध्यासनसे जिसका मन समाधान नही है जिसका मन चंचल है ऐसा पुरुष केवल शास्त्रके अध्ययनसे मुझे प्राप्त नही कर सकता ॥३३॥

जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति इन तीनों अवस्थाका प्रपंच जिस साक्षीरूप अधिष्ठान ब्रह्मस्वरूपके द्वारा प्रकाशित होता है, वह ब्रह्म मै हूँ, ऐसा यथार्थ जाननेसे यह सम्पूर्ण बंधनोंसे मुक्त हो जाता है ॥३४॥

तीनों अवस्थामें जो भोग पदार्थ जो भोक्ता और जो भोग्य वस्तु है, यह तीनों ब्रह्मकी ही सत्तासे कल्पित है, इनका प्रकाशक गति करनेहारा सदाशिव मै ही हूँ ॥३५॥

इस प्रकार निर्गुण कथन कर अब फिर मद अधिकारियोंको सगुणरूप का उपदेश करते है, मध्याह्नकालके करोडों सूर्यकी समान तेजयुक्त और करोडों चन्द्रमाकी समान शीतल सूर्य चंद्रमा अग्नि जिसके नेत्र है उनके मुखकमलका स्मरण करे ॥३६॥

एक ही परमात्मा सम्पूर्ण भूतोंमे गुप्त है, सर्वव्यापी और सब भूतोंका अन्तरात्मा है, सबका अध्यक्ष और सब भूतोंमें निवास करनेवाला सबका साक्षी चित्तकी प्रेरणा करनेवाला निर्लेप और निर्गुण है ॥३७॥

स्वाधिक सब भूतोंका आत्मा वह एकही देव है, मायारूप प्रपंचका बीज प्रगट करता है, वह पुरुष मै ही हूँ मुझको जो धीर पुरुष शास्त्र और आचार्यके उपदेशसे साक्षात्कार करते है उन्हीको निरन्तर शान्ति और कैवल्य मुक्ति होती है, दूसरों को नही ॥३८॥

जिस प्रकार से एक ही अग्नि सब संसारमें प्रविष्ट होकर उन काष्ठ लोह आदिमें सीधे टेढे चतुष्कोण आदिरूपसे उसी वस्तुके आकारसी हो ही है, इसी प्रकार सबका अन्तरात्मा एकही है, और शरीरमें प्राप्त होनेसे उसीके आकारसा प्रतीत होता है,यद्यपि उपाधिके वशीभूत होनेसे भिन्न २ प्रकार का प्रतीत होता है, तथापि सर्व लोकके दुःख से वह दुःखी और सुखसे सुखी नही होता ॥३९॥

जो विद्वान ज्ञानी मुझको सर्वान्तर्यामी महान व्यापक स्वप्रकाश, मायासे रहित आत्मस्वरूप जानता है, वही संसार बंधनसे मुक्त होता है, इसके सिवाय मुक्तिके प्राप्त होने का दूसरा उपाय नही है, तथा च श्रुति (वेदाहमेतं पुरुषं महान्तमादित्यवर्णं तमसः परस्तात ॥ तमेव विदित्वातिमृत्युनेति नान्यः पंथा विद्यतेयनाय) ॥४०॥

प्रथम सृष्टिके आरंभ में मै ब्रह्माको उत्पन्न करके उसके निमित्त वेद को उपदेश करना वही स्तुतिके योग्य पुराण पुरुष मै हूँ, जो इस निश्चयसे मुझे जानते है, वे मृत्यु के मुखसे छूट जाते है तथा च श्रुतिः (या वै ब्रह्माणं विदधाति पूर्वं यो वै वेदाश्चं प्रहिणोति तस्मै) इत्यादि श्रुतिमें प्रसिद्ध है ॥४१॥

इस प्रकार शान्ति आदि गुणोंसे युक्त हो जो मुझको तत्त्वसे जानता है वह दुःखोसे छूटकर अन्तमें मुझको प्राप्त हो जाता है ॥४२॥

इति श्रीपद्मपुराणे शिवगीतासुपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे शिवराघवसंवादे उपासनाज्ञानफलं नाम द्वादशोऽध्यायः ॥ १२॥

अध्याय १३

सूतजी बोले, बुद्धिमानोंमे श्रेष्ठ रघुनाथजी इस प्रकार श्रवण करके प्रसन्न हो गिरिजापतिसे मुक्तिका लक्षण पूछने लगे ॥१॥

श्रीराम उवाच ।

श्रीरामचन्द्र बोले- हे कृपासागर भगवन् ! आप मेरे ऊपर प्रसन्न होकर मुक्ति का स्वरूप और लक्षण वर्णन किजिये ॥२॥

श्रीभगवानुवाच ।

श्रीभगवान बोले, हे राम! सालोक्य, सारूप्य, सार्ष्ट्य सायुज्य और कैवल्य यह मुक्तिके पांच भेद है ॥३॥

जो कामना रहित अज्ञानसे हीन होकर मूर्तिमें मेरा पूजन करते है वह मेरे लोकको प्राप्त होकर सालोक्य मुक्ति को प्राप्त होते है और अनेक प्रकार के इच्छित भोग भोगते है ॥४॥

और जो मेरा स्वरूप जानकर निष्काम बुद्धिसे मेरा भजन करता है वह मेरे स्वरूपको प्राप्त होकर अनेक प्रकारके अभिलाषित भोगोंको भोगता है इसे सारूप्य मुक्ति कहते है ॥५॥

जो पुरुष मेरी प्रीतिके निमित्त इष्टपूर्तादिकर्मोको करता है वह भी उसी फलको प्राप्त होता है इसमें संशय नही ॥६॥

जो कर्ता जो भोजन करता और जो अग्निमें हवन करता है जो देखता है और जो कुछ तपस्या आदि करता है, वह सब मेरे ही अर्पण करता है, वह मेरे लोक की सब लक्ष्मी जगत् के कर्तापन आदिसे व्यतिरिक्त सब दिव्य संपत्ति भोगता है, इसे सार्ष्ट्य मुक्ति कहते है ॥७॥

जो शान्ति आदि साधनसे युक्त होकर श्रवण मनन निदिध्यासनपूर्वक मुझेही आत्मारूप जानता है वह अद्‌वैत स्वप्रकाश ब्रह्मके तद्रूपको प्राप्त होता है, जो जीवका यथार्थ स्वरुप है इस स्वरूपसे अवस्थान करने का नाम सायुज्यमुक्ति है ॥८॥९॥

सत्य ज्ञान अनंत आनंद इत्यादि लक्षण युक्त और सब धर्मरहित मन और वाणीसे परे ॥१०॥

सजातीय और विजातीय पदार्थोके उसमें न होनेसे इस ब्रह्मको अद्‌वैत कहते है ॥११॥

हे राम! यह जो शुद्ध स्वरूप का वर्णन किया है; इसे आत्मरूप जानकर सम्पूर्ण स्थावर जंगम जगतको मेरे ही रूपमें देखता है ॥१२॥

जिस प्रकार आकाशमें गन्धर्वनगर नही है और उसकी मिथ्या प्रतीति होती है इसी प्रकारसे यह अनादि अविद्‌यासे उत्पन्न हुआ जगत् मुझमें कल्पना किया जाता है, वास्तविक मिथ्या है ॥१३॥

जिस समय मेरे स्वरूपके ज्ञानसे अविद्‌या नष्ट हो जाती है तब मन वाणीसे परे एक म ही विद्‌यमान रहता हूँ ॥१४॥

मै नित्य परमानन्द स्वप्रकाश और चिदात्मा हूँ, काल दिशा विदिशा पंचभूत इस स्वरूपमें कुछ नही है, मेरे सिवाय दूसरी कोई वस्तू नही है, मै केवल एकही विद्‌यमान रहता हूँ ॥१५॥

मेरे निर्गुण स्वरूप कोईनील पीतादि आकार और वर्णका नही है और इन चर्मचक्षुसे भी कोई मुझे देखनेको समर्थ नही हो सकता, जो कोई हृदयमें बुद्धिसे मेरे स्वरूपको जानते है, वे ही ज्ञान मुक्त हो जाते है ॥१६॥

श्रीराम उवाच ।

श्रीरामचन्द्रजी बोले, हे भगवन!! ! मनुष्योंको शुद्ध ज्ञान किस प्रकारसे होता है, हे शंकर! जो आपकी कृपा मेरे ऊपर है तो इसका उपाय वर्णन कीजिये ॥१७॥

श्रीभगवानुवाच ।

श्रीभगवान बोले, ब्रह्मलोकपर्यन्त दिव्य देहको भी नाशवत समझकर भार्या, मित्र, पुत्रादि इन सबको क्लेशदाता और अनित्य समझकर इनसे चित्तकी वृत्ति पृथक करे ॥१८॥

और श्रद्धापूर्वक ज्ञान प्राप्त होने के निमित्त मोक्षशास्त्र वेदांतमें निष्ठाशील होकर उसी के जाननेका उपाय करता हुआ ब्रह्मवेत्ता गुरुके निकट जाय ॥१९॥

उस गुरुके आगे अपने हाथमें लाया हुआ पदार्थ रखके दंडवत नमस्कार करे फिर उठके हाथ जोड़के इच्छित अर्थका निवेदन करे ॥२०॥

बहुत कालतक सावधान हो इन्हे सेवासे संतुष्ट करे और मन लगाकर सब वेदान्तके वाक्योंका अर्थ श्रवण करे ॥२१॥

और सम्पूर्ण वेदान्तके वाक्यों का तात्पर्यभी निश्चय करले (यह नही कि अहं ब्रह्म करता फिरे) इसका नाम ब्रह्मवादियोनें श्रवण कहा है ॥२२॥

लोहमणी आदिके दृष्टान्त सद्युक्तिसे जैसे कि, चम्बुककी शक्तिसे लोहा भ्रमण करता है, इसी प्रकार ब्रह्मकी सत्तासे जगत् भ्रमण करता है श्रवणको पुष्ट करके मनन करे अर्थात् उसका चिन्तन करे वाक्यार्थके विचारका ही नाम मनन कहा है ॥२३॥

ममता और अहंकार रहित सबमें समान संगवर्जित शांति आदि साधन सम्पन्न होकर निरन्तर ध्यानयोगसे आत्माका आत्मासेही ध्यान करनेको निदिध्यानसन कहते है ॥२४॥

सम्पूर्ण कर्मके क्षय हो जानेसे जो आत्मा का साक्षात्कार है, किसी को शीघ्र और किसीको चिरकालमें होता है जिसे प्रतिबंधक नही होता उसे शीघ्र और जिसे प्रतिबंधक होते है उसे देरेमें होता है ॥२५॥

जो कुछ जीवके किये हुए और करोडों जन्मसंग्रह किये कर्म है वह ज्ञानसे ही नष्ट होते है, कर्म चाहे दशसहस्त्र करोडनसे नष्ट नही होते ॥२६॥

ज्ञान होने पर जो कुछ पुण्य वा पाप थोडा या बहुत किया जाता है, उससे यह प्राणी लिप्त नही होता ॥२७॥

और जो इस प्राणीके शरीर निर्माणका हेतु प्रारब्धका कर्म है, वह भोगनेसे ही नष्ट होगा, ज्ञानसे नही ॥२८॥

जिसको मो अहंकार नही है, जो सम्पूर्ण संगसे रहित है, सम्पूर्ण प्राणियोंको आत्मामें और सम्पूर्ण प्राणियों में जो आत्माको देखता है इस प्रकार ज्ञानयुक्त विचरता हुआ प्राणी जीवन्मुक्त कहाता है, कारण कि वह प्रारब्ध कर्मक्षयके निमित्त विचरता है ॥२९॥

सांपकी कैंचली सर्पसहित जिस प्रकार देखनेवालोको भय देती है और सर्पके शरीरसे छूटने पर कुछ भी भय नही देती, इसी प्रकार मायामुक्त आत्माके होनेसे अनेक प्रकारसे संसार भय प्रतीत होते है, वही जीवन्मुक्त होने से फिर कही किसी प्रकारसे भयभीत नही होता ॥३०॥

जिस समय इस प्राणीके हृदयकी वासना संपूर्ण नष्ट हो जाती है और वैराग्य प्राप्त होता है, तभीयह प्राणी अमृत हो जाता है, यही वेदान्तशास्त्रकी मुख्य शिक्षा है ॥३१॥

जिस प्रकार कैलास वैकुंठ आदि दिव्यलोक है, इस प्रकार मोक्ष कोई लोक नही है, मुक्त किसी ग्रामान्तरका निवासी नही होता, केवल हृदयकी अज्ञानग्रन्थिके नष्ट हो जानेसे मुक्त होता है ॥३२॥

जिसका वृक्ष अग्रभागसे चरण आगे पडता है वह उसी समय नीचे गिरता है, इसी प्रकार ज्ञानी पुरुषोंको ज्ञान होते ही मुक्तिकी प्राप्ति हो जाती है, इस संसारसे वह तत्काल छूट जाता है ॥३३॥

जीवन्मुक्त पुरुष तीर्थमें वा चाण्डालके घरमे देह त्यागन करे अथवा ब्रह्मका चिन्तन करता हुआ देहका त्यागन करे किंवा अचेतन होकर मृतक हो जाय, वह ज्ञानके बलसे मुक्तही हो जाता है ॥३४॥

जीवन्मुक्त किसी प्रकारके वस्त्र धारण करे, वा नग्न, भक्ष्य अथवा अभक्ष्य कुछभी खाय चाहे जहां शयन करे वह प्रारब्धकर्मके क्षय हो जानेसे मुक्त हो जाता है ॥३५॥

जिस प्रकार दुधमें से निकाला हुआ घृत यदि फिर दूधमें डालो वह घृत उसमें नही मिलता उसी प्रकार ज्ञानवान संसारसे विरक्त होकर फिर जगतमें आसक्त होता नही ॥३६॥

हे रामचन्द्र! जो इस अध्यायको नित्य पढते और सुनते है वह अनायास देहबंधनसे छूट जाते है ॥३७॥

हे राम! तुम्हारा अन्तःकरण जो संशयके वश हो रहा है इस कारण तुम नित्य इस अध्याय का पाठ करो इससे अनायास तुम्हारी मुक्ति हो जायेगी ॥३८॥

इति श्रीपद्मपुराणे शिवगीतासूपनिषत्सु० शिवराघवसंवादे त्रयोदशोऽध्यायः ॥१३॥

अध्याय १४

श्रीराम उवाच ।

शिवजीसे ब्रह्मसाक्षात्कारकी विधि सुनकर अब दूसरे साधनोंसे प्रश्न करते हुए, रामचन्द्रजी बोले- हे भगवन् ! यद्यपि तुम्हारा रूप सच्चिदानंदात्मक निरवयव क्रियाशून्य और निर्दोष है ॥१॥

तथा सब धर्मोसे परे मन और वाणीके अगोचर तुमको सर्वव्यापक होनेसे जीव सर्वस्थानमें स्थित आत्मा स्वरूपसे देखता

है ॥२॥

आत्मविद्या और तपही जिसका मूल साधन है, जो उपनिषदोंका मुख्य तात्पर्य है, जो मूर्तिरहित सम्पूर्ण भूतोंका आत्मा अर्थात् सब जीव जिसके अंश है, जो कारण का कारण अदृश्य स्वरूप है ॥३॥

जो अतिसूक्ष्म और इन्द्रियोंसे अग्राहय है वह ब्रहम ग्राहय कैसे हो सकता है, उस सूक्ष्ममे चित्तकी वृत्ति किस प्रकार हो सकती है, यह मुझे संदेह है इसी से बुद्धि व्यग्र है इसका उपाय आप वर्णन कीजिये ॥४॥

श्रीभगवानुवाच ।

श्रीशिवजी बोले- हे महाभुज रामचन्द्र! सुनो मै इस विषयमें उपाय कहता हूँ प्रथम सगुण उपासना करते २ चित्त को एकाग्र करे और स्थूलसौरांभिकान्यायसे निर्गुण स्वरूपमें चित्तकी वृत्ति प्रवृत्त करे, स्थूलसौरांभिकान्याय इसको कहते है कि, प्रियमनुष्यको जिस प्रकार मृगजल दिखाकर रवि य्थार्थ जल है ऐसा प्रतारणासे बुलाकर फिर वास्तविक जल दिखाते है, इसी प्रकार प्राणीको प्रथम साधनादि का उपदेश कर पीछे ब्रहमज्ञान कथन करते है ॥५॥

और इस प्रकार जाने कि इस अन्नके पिंड स्थूल देह में जन्म मृत्यु व्याधि यही दृढतासे विद्यमान है, अर्थात् निश्चयही इसकी दशा बदलती रहती है ॥६॥

ऐसे स्थूल देहमें प्राणोको अहंभावसे जो आत्मबुद्धि दृढ हो जाती है वह नही मिटती, आत्मा कभी जन्म नही लेता और इसका नाश भी नही होता कारण कि यह नित्य है ॥७॥

अब शरीरकी अवस्था वर्णन करते इसकी निस्सारता प्रतिपादन करते है । उत्पत्ति (होना) अस्ति, परिपक्वता, वृद्धि, क्षय और नाश यह छः अवस्था इस शरीर की है ॥८॥

और घटमे स्थित आकाश जिस प्रकार निर्विकार है, इसी प्रकार इस देहमें आत्मा विकार रहित है, इस प्रकार देह और आत्मा इन दोनोंके धर्म परस्पर विरुद्ध है, अज्ञानी जन अविद्यासे देहको आत्मा मानते है, और ज्ञानी देहसे आत्मा को पृथक् देखते है ॥९॥

घडियामें गला करके डाले सुवर्णकी कान्तिके समान प्राणमय कोश है, यह स्थूल देह के अन्तर प्राणादि वायुसे बद्ध वर्तमान है, परन्तु पाय्वादि इन्द्रियोंसे युक्त चलनादि कर्मोसे युक्त क्षुधापिपाससे व्याप्त और जड होने के कारण यह आत्मा नही है ॥१०॥११॥

आत्मा चैतन्यरूप है जिसके द्वारा यह जीव अपने शरीरको देखता है आत्माही परब्रहम निर्लेप और सुखका सागर है ॥ १२॥

अज्ञान इस ब्रहमका ग्रास नही कर सकता, न ब्रहम किसी वस्तुका ग्रास करता है अर्थात् वह अनामय परिपुर्ण सर्वत्र सुखस्वरूप है, उसे कार्य कारण की अपेक्षा नही है, उस प्राणमय कोशके अन्तर्गत मनोमयकोश है, वह संकल्प विकल्परूप बुद्धि और इंद्रियोंसे समायुक्त है ॥१३॥

काम, क्रोध, लोभ, मोह मात्सर्य और मद यह शत्रुओंका षड्वर्ग और ममता इच्छादिक यह सम्पूर्ण मनोमयकोशके धर्म है ॥१४॥

जो कर्मविषयिणी बुद्धि और वेदशास्त्र से निश्चित की गई है, वह ज्ञान इन्द्रियोके सहित विज्ञानमय कोशमें स्थित रहती है ॥१५॥

इसमें कर्तृत्वपनका अभिमानी निःसन्देह वह जीव विद्यमान है । जो इस लोक तथा परलोकमें गमन करता है, व्यवहारमें जिसको जीव कहते है ॥१६॥

आकाशादिके सात्त्विक अंशसे ज्ञानेन्द्रियोंकी उत्पत्ति होता है, आकाशसे श्रोत्र, पृथ्वीसे घ्राण, जलसे जिहवा, और तेजसे चक्षु और वायुसे त्वचा उत्पन्न होती है इस प्रकार यह इन्द्रिय पांचभौतिक है, जीवत्वप्राप्तिके तीन शरीर है, स्थूल, सूक्ष्म और कारण, स्थूल का अन्त सूक्ष्म और सूक्ष्मका अन्तः कारणशरीर है, सूक्ष्म शरीरकोही लिंग शरीर कहते है, इन तीनों शरीरोंमे पांचकोश रहते है, अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय और आनंदमय, स्थूल शरीरमें अन्नमय कोश है, सूक्ष्म शरीरमें आनंदमय कोश है, इन पांचो कोशोंमें अन्नमयकोशसे वर्णन करके लिंग शरीरके तीनों कोश कहकर लिंगशरीरके अवयवोंका वर्णन किया है ॥१७॥१८॥

इन पांचभूतोंके सात्विकादि अंशसे बुद्धि और मन उत्पन्न होते है, जिसमें बुद्धि निश्चयात्मिका और मन संशयात्मक है और वचन हाथ्, पाद, पायु, उपस्थ यह पांच कर्मेन्द्रिय तो आकाशादिकोंके रजोगुण अंशसे क्रमपूर्वक उत्पन्न होते है ॥१९॥

और उन सबके रजोगुण समान मिलनेसे पांच प्राणादि वायु उत्पन्न होते है, यही पांच ज्ञानेन्द्रिय, पांच कर्मेन्द्रिय, पांच प्राण, मन और बुद्धि मिलाकर सत्रह अवयवोंसे लिंग शरीरकी उत्पत्ति होती है ॥२०॥

यह लिंगशरीर तपाये हुए लोहखण्डकी समान गोल है, इस कारण परस्परके अधयस पड़नेसे साक्षी चैतन्यसे युक्त है ॥ २१॥

जहा साक्षी चैतन्य लिंग शरीरसे अध्यासको प्राप्त होता है, वही आनंदमयकोश है, उस आनंदमयकोशका जो कर्तृत्वपनका अभिमानी है, वही उपासना और कर्म फलसे इस लोक तथा परलोकमें कर्मफलका भोगनेवाला कहा जाता है ॥२२॥

और जिस समय निद्रावस्थामें यही आत्मा लिंगशरीरके अध्यासको छोड़कर केवल अपने स्वरूपमें अविद्यासंयुक्त रहता है, तब इसकी साक्षी संज्ञा है ॥२३॥

अन्तःकरणादि इन्द्रिय और इनकी वृत्ति अनुभव और स्मृति इनका द्रष्टा होनेसे अन्तःकरणका अध्यास होनेपर आत्माको साक्षित्व और केवल (अन्तःकरणका अध्यास नही ऐसा) हुआ तब भोक्तृत्व होता है ॥२४॥

इसके उपरान्त "ऋत पिबतौ सुकृतस्य लोके गुहां प्रविष्टौ परमे परार्धे । छायातपौ ब्रह्मविदो वदन्ति पञ्चाग्नयो ये च त्रिणाचिकेताः' इस श्रुतिको कहते है, आतप बिना आच्छादित बिंबरूप ईश्वर छाया- आच्छादित बिंबरूप जीव यह दोनो ब्रह्मए प्रकाशसे प्रकाशित है, इन दोनोंमें एकजीव भोक्ता होनेसे कर्मफलको भोक्ता है और ईश्वर द्रष्टा होनेसे भुगाता है ॥२५॥

क्षेत्रज्ञ जीवात्माको रथी, शरीरको रथ, बुद्धिको सारथी, मनको लगाम कहते है सो तू जाना ॥२६॥

इन्द्रियोको घोड़े स्वरूप जानना और यह इन्द्रियरूपी अश्व रूपादिविषयरूपी स्थानमें विचरते है, इन्द्रिय और मनके सहित यह आत्मा भोक्ता कहाता है वास्तवमें उपाधि बिना यह आत्मा शुद्ध है कदाचित् कर्तृत्व भोक्तृत्वको प्राप्त नही होता, तात्पर्य यही है कि रथी तो रथ में बैठा है, सारथी और घोडे रथ को जिधर ले जाय उधर ही जाता है और यदि दुष्ट घोडे हुए तो सारथी का भी कहना न मानकर रथ लेकर कही गढे में डाल देते है, इसी प्रकार दुष्ट इन्द्रिये इस शरीररूपी रथको विषयोमें लेजाकर पटकती है, तब सब इन्द्रियोंके सहित आत्मा दुःखी प्रतीत होता है ॥२७॥

इस प्रकारसे जो ब्राह्मण शान्ति आदिसे युक्त होकर उपासना करता है वह जिस प्रकारसे कदलीके वल्कलको बराबर उतारते चले जाओ तो उसमें वल्कलही निकलते है पश्चात सार प्राप्त होता है, इसी प्रकार पंचकोशमें क्रम से उपासना करते और उनसे चित्त हटाते तथा उन्हे असाररूप जानते हुए सबके अन्तःसारभूत आत्मा को प्राप्त होता है ॥२८॥२९॥

इस प्रकार मन को सावधान करके पंचकोश का ज्ञान करके जो मन स्थिर करता है, तब उसका चित्त निराकार परमात्मामें लग जाता है ॥३०॥

तब यह मन केवल परमात्माको ही ग्रहण करता है जो केवल अदृश्य, अग्राह्य, स्थूल सूक्ष्मादि धर्म से परे है, उसमें प्राप्त होकर निश्चल हो जाता है, फिर चलायमान नही होता ॥३१॥

श्रीराम उवाच ॥

श्रीरामचन्द्र बोल-हे भगवन्! जब श्रवणादि साधनद्वारा आत्मस्वरूपकी प्राप्ति हो जाती है तो वेदशास्त्रके जाननेवाले यज्ञशील सत्यवादी उसके श्रवण करनेमें प्रवृत्त क्यों नही होते ॥३२॥

और कोई सुनकर भी आत्माको जान नही सकते, और कोई जानकर भी मिथ्या मानते है, क्या यह तुम्हारी माया है ॥३३॥

श्रीभगवानुवाच ।

श्रीशिवजी बोले, हे महाबाहो! यह ऐसेही है इसमें कुछ सन्देह नही, मेरी त्रिगुणात्मिका मायाका उल्लंघन करना महा कठिन है ॥३४॥

जो मेरी शरणागत आकर मुझको प्राप्त हो जाते है वे ही इस माया को तरते है, हे महाभुज! जो अभ्यभक्त है और जिनकी श्रद्धा मेरे विषय नही है ॥३५॥

वे इस लोक और परलोकमें अनेक प्रकारके फलकी इच्छा करनेवाले है उनको कर्मानुसार फल मिलता है वे सुख भोगकर भी थोड़े कालमें इस लोक में प्राप्त होते है, कारण कि, उन्हे तो कर्मफलही इष्ट है और कर्मफल क्षय होनेवाला है तथा थोडा और ऐसे लोकोंमें उन फलोंको भोगते है जहां जहां अल्पसुख है और शीघ्र नष्ट हो जाता है ॥३६॥

इस बातको न जानकर जो अधम मनुष्य कर्मो को करते है, वे माताके गर्भमें उत्पन्न होकर बारंबार मृत्यु मुखमें पडते है ॥३७॥

अनेक प्रकार की योनियोंमें उत्पन्न हुए किसी एक प्राणीकी करोडों जन्मके संचित किये पुण्यसे मेरे विषे भक्ति होती है ॥३८॥

वही श्रद्धायुक्त मेरा भक्त ज्ञान को प्राप्त होता है और दूसरा करोडों जन्मभी कर्म करनेसे मुझे प्राप्त नही होता ॥३९॥

इस कारण हे राम! और सब त्यागकर केवल मेरी भक्ति करो । दुसरे और सब धर्मोका त्यागन करके एक मेरी शरणमें हो मै तुमको सब पापोसे छुड़ाकर मुक्त कर दूँगा तुम सोच कुछ मत करो ॥४०॥

हे राम! तुम कुछ कर्म करते जो भोजन करते जो हवन करते और जो देते हो तथा जो तप करते हो वह सब मेरे अर्पण करो, हे राम ! इससे अधिक मेरेमें दृढ भक्ति होनेका दूसरा साधन नही है इसका तात्पर्य यह है कि शरीर इन्द्रिय और प्राण तथा मनके जो जो धर्म है उनका त्याग करके मुझको आश्रित हो अर्थात् मुझे प्राप्त हो ॥४१॥४२॥

इति श्रीपद्मपुराणे उपरिभागे शिवगीतासू० शिवराघवसंवादे पञ्चकोशोपपादनं नाम चतुर्दशोध्यायः ॥१४॥

अध्याय १५

श्रीरामचन्द्र बोले, हे भगवन! आपकी भक्ति कैसी है और वह किस प्रकार उत्पन्न होत है जिसके प्राप्त होनेसे यह जीव निर्वाण हो जाता है ओर मुक्तपदवी प्राप्त करता है, हे शंकर ! वह आप सब वर्णन कीजिये, जिससे संसारसे निवृत्ति प्राप्त हो ॥१॥

श्रीभगवानुवाच ।

शिवजी बोले जो वेदाध्ययन दान यज्ञ सम्पूर्ण मेरे में अपर्णकी बुद्धिसे करता है वह मेरा भक्त और मेरा प्रिय है वह इस प्रकार है कि "आम्ता त्वं गिरिजा मतिः सहचराः प्राणाः शरीरं गृह पूजाते विषयोपभोगरचना निद्रा समाधिस्थितिः । संचारः पदयोः प्रदक्षिणविधिः स्तोत्राणि सर्वा गिरो यद्यत्कर्म करोमि तत्तदखिलं शम्भो तवाराधनम् ॥१॥" अर्थ यह कि, यह शरीर शिवालय है, इसमें सच्चिदानन्द आप हो, बुद्धिरूप श्रीपार्वतीजी है, आपके साथ चलनेवाले नौकर प्राण है और जो मै विषयानन्दके निमित्त खाता पिता देखता सुनता हू बोलता स्पर्श करता हूं, यही आपकी पूजा है, निद्रा समाधि है, फिरना आपकी प्रदक्षिणा है, वचन आपकी स्तुति है, हे शिव! इस प्रकार मै आपका आराधन करता हूं, आप मेरे ऊपर कृपा करो इस प्रकार आराधन करे कर्मोको ऐसे मेरे अर्पण करे ॥२॥

अग्निहोत्रकी पवित्र भस्म लाकर अथवा श्रोत्रिय ब्राह्मणके स्थानसे लाकर "अग्निरिति" भस्म इत्यादि मन्त्रोंसे यथाविधि अभिमंत्रित कर ॥३॥

अपने शरीरमे उसे लगाकर और भस्मद्वाराही जो मेरा अर्चन करता है, हे राम! उससे अधिक मेरी भक्ति करनेवाला दूसरा नही है ॥४॥

जो प्राणी मस्तक और कण्ठमें रूद्राक्षको धारण करता है और (नमः शिवाय) इस पंचाक्षरी विद्याका जप करता है वह मेरा भक्त है और मुझे प्यारा है ॥५॥

भस्म लगानेवाला, भस्मपर शयन करनेवाला, सदा जितेन्द्रिय जो सदा रुद्रसूक्त जपता और अनन्य बुद्धिसे मेरा चिन्तन करता है ॥६॥

वह उसी देहसे शिवस्वरूप हो जाता है, जो रुद्रसूक्त वा अथर्वशीर्ष मन्त्रोका जप करता है ॥७॥

कैवल्योपनिषद् वा श्वेताश्वतर उपनिषद्का जो जप करता है उससे अधिक मेरा दूसरा भक्त इस लोकमें नही है ॥८॥

धर्मसे विलक्षण, अधर्मसे विलक्षण, कार्य और कारणसे भी परे भूत और भविष्यकालसे भी परे जिसको मै कहता हूं, सो तू सुन ॥९॥

जिस वस्तुको वेद और सब शास्त्र वर्णन करते है जो सम्पूर्ण उपनिषदोंमे से सारग्रहण किया है जैसे दहीमें से घृत ॥१०॥

जिसकी इच्छा करके मुनिजन ब्रह्मचर्य धारण करते है, वह अकार उकार मकारात्मक हमारा पद है, सो मै तुझसे संक्षेपसे वर्णन करता हूं ॥११॥

यही अक्षर परब्रह्म और सगुणब्रह्म, निर्गुणब्रह्म है, इसी अक्षर ब्रह्मके जाननेसे ब्रह्मलोकको प्राप्त होकर मुक्त हो जाता है ॥१२॥

यही उत्तम आधार हैयही उत्तम तारक है इसको जानके ब्रह्म लोकमें पूजित होता है ॥१३॥

जो वेदरूपी धेनुओंमें श्रेष्ठ है ऐसा वेदान्त प्रतिपादन करता है यही मोक्षका धारण करनेवाला और संसारसागर का सेतु है तथा च श्रुतिः "यश्छन्दसामृषभो विश्वरूपश्छन्दोभ्योऽध्यमृतात्संबभूव" इति नै० ॥१४॥

वह वस्तु क्या है अब उसका वर्णन करते है वह मेदसे आच्छादित हुए कोश अर्थात् हृदयाकाशमें जो ब्रह्म है उसे ओंकार

कहते है । यही परम मंत्र है और इसीमें सब लोक निवास करते है, तथा च श्रुतिः "सोअयमात्माऽध्यक्षरमोंकारोधिमत्रं पादमात्रा मात्राश्च पादा अकार उकारो मकारः" इति माण्डु०। "ओमिति ब्रह्म । ओमितिदं सर्वम् ।" अर्थात यह ओंकारही ब्रह्म और सब कुछ है ॥१५॥

उसकी चार मात्रा है अकार उकार और मकार और अन्तकी कारणरूप आधी मात्रा है पहली अकाररूप मात्रामें भूलोक ऋग्वेद, ब्रह्मदेव, आठ वसु, गार्हपत्य अग्नि, गायत्री छन्द और प्रातः सेवन यह आठ देव निवास करते है ॥१६॥

दूसरी उकार मात्रामें भुवर्लोक, विष्णु, रुद्र, अनुष्टुप् छन्द, यजुर्वेद, यमुनानदी, दक्षिणाग्नि, माध्यंदिन सवन यह देवता निवास करते हैं ॥१७॥

तीसरी प्रकार मात्रा मे स्वर्लोक, सामवेद, आदित्य, महेश्वर, आहवनीयग्नि, जगती छन्द और सरस्वती नदी ॥१८॥

और अथर्ववेद तृतीयसवन यह वास करते है और जो चौथी मात्रा है वह सोमलोक ॥१९॥

अथर्वांगिरस गाथा संवर्तक अग्नि महर्लोक, विराट्, सभ्य और आवसथ्य अग्नि, शुतद्रीनदी और यज्ञपुच्छ यह देवता निवास करते है "अमात्रश्चतुर्थो व्यवहार्य्यः प्रपञ्चोपशमः शिवोअद्वैत एवमोङ्कार आत्मेव संविशत्यात्मनाअत्मान् य एवं वेद य एवं वेद" अर्थात् जाग्रत स्वप्न सुषुप्ति तीन अवस्थासे परे अमात्रिक तुरीया अवस्थारूप आत्मा ही है, यह वाचकवाच्यरूप वाणी मनका मूल अज्ञान दूर करनेसे व्यवहारके अयोग्य है, तथा प्रपंचरहित शिवस्वरूप और अद्वैत है । यह उच्चारण किया हुआ ॐकार आत्मा ही है ऐसे जो जानता है वह अपने आत्मासे परमार्थरूप आत्मामें प्रवेश करता है, और जन्मके कारणोंका लय कर फिर उत्पन्न नही होता ॥२०॥

पहली मात्रा रक्तवर्ण, दूसरी भास्वर (प्रकाशयुक्त) वर्ण, तीसरी बिजलीके वर्णकी तथा चौथी मात्र शुभ वर्ण है ॥२१॥

जो कुछ उत्पन्न हुआ है और जो कुछ उत्पन्न होगा स्थावर जंगमात्मक अनेक प्रकारका यह जगत ॐकारमें ही प्रतिष्ठित है ॥२२॥

भुत भविष्यरूप यह संसार रुद्ररूप ही है और रुद्रमें प्राण और उसमें भी ॐकार स्थित है, तात्पर्य यह है शिव और ॐकार एकस्वरूप है ॥२३॥

वह शिवरूप सनातन ब्रह्म ॐकारने ही वर्तमान है इस कारण ॐकारका जपनेहारा निःसन्देह मुक्त हो जाता है ॥२४॥

श्रौत अग्निसे अथवा स्मार्त अग्निसे अथवा शैवाग्निसे उत्पन्न हुई भस्मको जो ॐकार से अभिमंत्रित करके ॐकारद्वारा जो मेरा पूजन करता है, उससे अधिक संसारमें मेरा दूसरा प्रियभक्त नही है ॥२५॥

घरकी अग्नि अथवा वनकी अग्निकी भस्मको ॐकार से अभिमंत्रित करके जो अपने शरीरमें लगावे वह शुद्रभी मुक्तिको प्राप्त हो जाता है ॥२६॥

दभांकुर, बिल्वपत्र तथा और भी वनके पर्वतके उत्पन्न हुए फूलोंसे ॐकार द्वारा जो मेरी नित्य पूजा करता है वह मेरा प्रिय है ॥२७॥

पुष्प, फल, मूल, पत्र किंवा जलसे जो ओंकारयुक्त मेरे निमित्त दान करता है, वह करोड गुना हो जाता है ॥२८॥

किसी प्राणिमात्राकि हिंसा न करनी, सत्य बोलना, चोरी न करनी, बाह्याभ्यंतर शौचयुक्त, इन्द्रियनिग्रह करनेवाले, वेदाध्ययनमें तत्पर जो मेरे भक्त है वे मेरे प्यारे है ॥२९॥

जो कोई प्रदोषके समय मेरे स्थानमें जाकर मेरी पूजा करता है, वह अत्यन्त लक्ष्मीको प्राप्त होता है, और अन्तमें मुझमें लय होजाता है ॥३०॥

अष्टमी, चतुर्दशी, पूर्णिमा, अमावास्या इन तिथियोंमें जो सर्वांगमें भस्म लगाकर रात्रिके समय मेरा पूजन करता है वह मेरा भक्त और प्रिय है ॥३१॥

जो एकादशीके दिन व्रत रहकर प्रदोषके समय मेरा पूजन करता है और विशेष करके जो सोमवारके दिन मेरी पूजन करता है, वह मेरा भक्त मुझे प्रिय है ॥३२॥

जो पंचामृत, पंचगव्य, पुष्प, सुगन्धयुक्त जल अथवा कुशके जलसे मुझे स्नान कराता है उससे अधिक मेरा कोई प्रिय नही है ॥३३॥

दूध, घृत, मधु, इक्षुरस (गन्नेका रस) पक्के आमके फल अथवा नारियलके जलसे ॥३४॥

अथवा जो गंधयुक्त जलसे रुद्रमंत्र उच्चारण करता हुआ मेरा अभिषेक करता है उससे अधिक प्यारा दूसरा मुझे नही है ॥३५॥

और जो जलमे स्थित हो सूर्यकी ओर मुख किये ऊपरको बाहें उठाये सूर्यके बिंबमें मेरा ध्यान करता हुआ अथर्वांगिरसका जप करता है वह इस प्रकार मेरे शरीरमें प्रवेश करता है, जैसे गृहपति घरमें प्रवेश करता है और बृहद्रथन्तर वामदेव

और देवव्रत सामको ॥३६॥३७॥

तथा योग आज्यदोह मन्त्रोंका जो मेरे आगे गान करता है वह इस लोकमें परम सुखको भोगकर अन्तमें मेरे स्थानको प्राप्त होता है ॥३८॥

अथवा जो ईशावास्यादि मंत्रोको सावधान हो मेरे सन्मुख जप करता है वह मेरी सायुज्य मुक्तिको प्राप्त हो मेरे लोकमें अक्षय सुख भोग करता है ॥३९॥

हे रघुनाथजी! यह मैने भक्तियोग तुम्हारे प्रति वर्णन किया यह मनुष्योंको सब कामनाका देनेहारा है अब और क्या सुननेकी इच्छा करते हो ॥४०॥

इति श्रीपद्मपुराणे उपरिभागे शिवगीता सू० शिवराघवसंवादे भक्तियोगो नाम पंचदशोध्यायः ॥१५॥

अध्याय १६

श्रीरामचन्द्र बोले - हे भगवन् ! आपने मोक्षमार्ग सम्पूर्ण वर्णन किया अब इसका अधिकारि कहिये । इसमें मुझको बड़ा संदेह है । आप विस्तारपूर्वक वर्णन किजिये ॥१॥

श्रीभगवानुवाच ।

श्रीभगवान बोले - हे राम! ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, स्त्री, ब्रह्मचारी, गृहस्थ तथा बिना यज्ञोपवीत हुआ ब्राह्मण ॥२॥

वानप्रस्थ, जिसकी स्त्री मृतक होगई हो, संन्यासी, पाशुपत व्रत करनेहारे इसके अधिकारी है और बहुत कहने से क्या है जिसके अन्तःकरणमें शिवजीके पूजनकी प्रबल भक्ति हो ॥३॥

वही इसमें अधिकारी है और जिसका चित्त दूसरी ओर लगा हुआ है वह इसमें अधिकारी नही तथा मुर्ख अंधे बहरे मूक शौचाचाररहित, स्नान संध्यादि विहित कर्मोंसे रहित ॥४॥

अज्ञोंका उपहास करनेवाले, भक्तिहीन, विभूति रुद्राक्षधारी, पाशुपतव्रतवालोंसे द्वेष करनेवाले चिह्नधारी इनमेंसे किसीकाभी इस शास्त्रमें अधिकार नही है ॥५॥

जो मुझसे ब्रह्मके उपदेश करनेवाले गुरुसे पाशुपतके व्रत धारण करनेवालोंसे वा विष्णुसे द्वेष करता है, उसका करोड जन्ममें भी उद्धार नही होता, आज कलके उन पुरुषोंको इस श्लोकके ऊपर विचार करना चाहिये, जो अज्ञानवश एक दुसरेसे द्रोह करते है । वह सब एकही रूप है । शिव तथा विष्णुमें कोइ भी भेद नही है, भेद माननेवालोंकी गति नही होती इसमें प्रमाण (स ब्रह्मा स शिवः स हरिः सेंद्रः सोअक्षरः परमः स्वराट्) अर्थात वही परमात्मा शिव हरि इन्द्र अक्षर परम स्वराट है (एक रूपं बहुधा यः करोति) वही एक अनेक रूपको धारण करता है और चाहे अनेक प्रकारके यज्ञादिककर्ममें तत्पर हो, और शिवज्ञानसे रहित हो तो शिवकी भक्ति न होनेका कारण वह संसारसे मुक्त नही होता ॥६॥७॥

जो वेदबाह्य धर्मोमें केवल फलकी इच्छा करके आसक्त होते है, उन्हे केवल दृष्टमात्र फलकी प्राप्ति होती है वे मोक्ष शास्त्रके अधिकारी नही है ॥८॥

काशी, द्वारका, श्रीशैल पर्वत, व्याघ्रपुर, इन क्षेत्रोंमे शरीर त्यागनेसे इस पुरुषको मेरी कृपासे तारक ब्रह्मकी प्राप्ति होती है ॥९॥

जिसके हाथ पैर और सम्पूर्ण इन्द्रिय, तथा मन वशमें है विद्या तप और कीर्ति विद्यमान है, वही तीर्थका फल प्राप्त करते है विकारी मनवाले तीर्थका फल प्राप्त नही कर सकते ॥१०॥

जिस ब्राह्मणका यज्ञोपवीत नही हुआ है उसे अधिकार है परन्तु वह वेदका उच्चारण नही कर सकता केवल माता पिताके श्राद्धकर्ममें उच्चारण कर सकता है ॥११॥

जबतक ब्राह्मणका उपनयन नही होता, तबतक वह शूद्रकी ही समान है, नाम संकीर्तन और ध्यानमें तो सब ही अधिकारी है ॥१२॥

शिवजीमीं तादात्म्य ध्यानसे अर्थात (शिवोऽहं इस प्रकार अन्तःकरनकी एक वृत्ति करनेसे यह प्राणी संसारके पार हो जाता है जिस प्रकार ध्यान तप वेदाध्ययन तथा दूसरे कर्म है यह ध्यान करनेके सहस्त्र भागकी भी तो समान नही हो

सकते ॥१३॥

जाति, आश्रम, अंग, देश, काल किंवा आसनादि साधन, यह कोईभी ध्यानयोगकी समान नही है ॥१४॥

चलते फिरते बैठते उठते बोलते शयन करते, अथवा दूसरे कार्योमें भी युक्त हो, और उनके अनेक पातकोंसे युक्त हो, वह भी ध्यान करनेसे मुक्त होजाता है ॥१५॥

इस ध्यानयोगके करनेसे नाश नही होता, नित्यनैमित्तिक कर्मकी समान इसमें प्रत्यवाय नही है, यह थोडासा अनुष्ठान क्रियाभी प्राणीको महाभयसे रक्षा करता है ॥१६॥

अतिआश्चर्य अथवा भय और शोक प्राप्त हुआ हो वा छींकने अथवा और कोई रोगमें जो किस बहानेसेभी मेरा उच्चारण करता है वह परमगतिको प्राप्त हो जाता है ॥१७॥

महापापीभी यदि देहान्तमें मेरा स्मरण करे तो (नमः शिवाय) इस पंचाक्षरी विद्याका उच्चारण करे तो निःसंदेह उसकी मुक्ती हो जाती है ॥१८॥

जो अपने आत्मासे ही आत्माको देखते सब संसारको शिवरूप देखते है उनको क्षेत्र तीर्थ वा दूसरे कर्मोके करनेसे क्या लाभ है उन्हे करनेकी आवश्यकता नही ॥१९॥

विभूति और रुद्राक्ष सदा सबको धारण करना चाहिये, शिवभक्ति करनेवाले योगी हो अथवा न हो सब रुद्राक्ष धारण करे जिन्हे शिवभक्ति प्राप्त होनेकी इच्छा हो ॥२०॥

जो अग्निहोत्रकी भस्म और रुद्राक्षको धारण करता है, वह महापापी होगा तौ भी निःसन्देह मुक्त हो जायेगा ॥२१॥

और शिव उपासनाके कर्म करै अथवा न करै जो केवल शिवका नामभी जपता है वह सदा मुक्तस्वरूप है ॥२२॥

अन्तकालमें जो रुद्राक्ष और विभूतिको धारण करता है, उसे चाहे महापाप भी लगे हो नरोंमे नीचभी हो किसी प्रकारसे भी यमके दूत उसे स्पर्श करनेको समर्थ नही होते ॥२३॥२४॥

जो कोई बेलवृक्षके जडकी मिट्टी शरीरमें लगाता है उसके निकट यमदूत किसी प्रकार से नही आ सकते ॥२५॥

श्रीराम उवाच ।

श्रीरामचन्द्र बोले- हे भगवन् किन मूर्तियोंमें पूजन करनेसे आप प्रसन्न होते हो, यह जाननेकी मुझे बड़ी इच्छा है, सो आप कृपाकर कहिये ॥२६॥

श्रीभगवान बोले - मृत्तिका, गोबर, भस्म, चंदन, वालुका, काष्ठ, पाषाण, लोहखण्ड, केशरादि रंग, कांसी ,खर्पर (जस्त) पीतल ॥२७॥

तांबा, रुपा, सुवर्ण, अथवा अनेक प्रकारके रत्न पारा अथवा कपूर ॥२८॥

इनमें जो अपनेको प्राप्त हो सके और जो इष्ट हो उससे शिवलिंगकी मूर्ति निर्माण करे, इस प्रकार प्रीतिसे मेरी उपासना करे तो कोटिगुणा फल होता है ॥२९॥

गृहस्थी पुरुशोंको उचित है कि, मृत्तिका काष्ठ लोह कांसी अथवा पाषाणकी प्रतिमा करे, उसमें पूजन करनेसे गृहस्थियोंको सदा आनंद की प्राप्ति होती है ॥३०॥

मृत्तिकाकी प्रतिमा पूजन करनेसे आयु, काष्ठकी प्रतिमा पूजन करनेसे सम्पत्ति, कांस्यकी पूजन करनेसे कुलवृद्धि, लोहकी प्रतिमा पूजन करनेसे धर्मबुद्धि, पाषाणकी प्रतिमा पूजन करनेसे पुत्र प्राप्ति क्रमसे होती है, बिल्ववृक्षके नीचे अथवा उसके फलमें जो मेरी आराधना करता है ॥३१॥

इस लोकमें महालक्ष्मीको प्राप्त होकर अन्तमें शिवलोकको प्राप्त होता है और बिल्ववृक्षके नीचे बैठकर जो विधिपूर्वक मंत्रो को जपे ॥३२॥

तो एकही दिनमे उस जप करनेवालेको पुरश्चरणका फल मिलता है, और जो मनुष्य बेलके वनमें कुटी बनाकर नित्य प्रति निवास करे ॥३३॥

उसके जपमात्रसे ही सब मंत्र सिद्ध हो जाते है, पर्वत के ऊपर नदी के किनारे, बिल्वके नीचे शिवालयमे ॥३४॥

अग्निहोत्रकी शालामें विष्णुके मंदिरमें जो मंत्रका जप करता है, दानव यक्ष राक्षस इसके जपमें विघ्न नही कर सकते ॥ ३५॥

उसे कोई पास स्पर्श नई कर सकता, वह शिवके सायुज्य लोकको प्राप्त होता है, पृथ्वी जल अग्नि वायु आकाश ॥ ३६॥

पर्वत किम्वा अपनी आत्माहीमें जो मनुष्य मेरा पूजन करता है, एक लवमात्रकी पूजा करनेसे उसे सम्पूर्ण फल प्राप्त होता है ॥३७॥

हे राम अपने आत्मामें जो पूजन करता है, उसकी बराबरी दूसरी पूजा नही आत्मामें पूजन करनेहारा चाण्डालभी मेरे लोकको प्राप्त होता है । सम्पूर्ण शुभकर्म आत्माहीको अर्पण करना, उसी का विचार करना, पापाचरण न करना, यही आत्माकी पूजा है ॥३८॥

ऊर्णावस्त्रके आसनपर पूजा करनेसे मनुष्यको सब कामनाकी प्राप्ति हो जाती है, मृगचर्मके आसनपर पूजा करनेसे मुक्ति और व्याघ्रचर्मपर पूजा करनेसे लक्ष्मीकी प्राप्ति होती है ॥३९॥

कुशासनपर बैठकर पूजा करनेसे ज्ञान, पत्रके आसनपर आरोग्यता, पाषाणके आसनपर दुःख और काश्ठके आसनपर पूजा करनेसे अनेक प्रकारके रोग होते है ॥४०॥

वस्त्रपे बैठनेसे लक्ष्मी प्राप्ति और पृथ्वीपर बैठकर जपनेसे मंत्र सिद्ध नही होता, उत्तर वा पूर्वको मुखकर जप और पूजाका प्रारम्भ करना उचित है ॥४१॥

हे रामचन्द्र! सावधान होकर सुनो, अब मालाकी विधि कहता हूँ, स्फटिककी मालासे साम्राज्य प्राप्त होता है पुत्रजीव जियापोतेकी मालासे अत्यन्त धनकी प्राप्ति होती है ॥४२॥

कुशकी ग्रन्थिकी मालासे आत्मज्ञान और रुद्राक्षकी मालासे सम्पूर्ण कार्योकी सिद्धि होती है, प्रवाल (मूंगा) की मालासे सब लोकके वश करने को सामर्थ्य होती है ॥४३॥

आमलेके फलोंकी माला मोक्षकी देनेवाली है, मोतियोंकी माला सम्पूर्ण विद्याओंकी देनेहारी है ॥४४॥

माणिक्यकी माला त्रिलोकीकी स्त्रियोंको वश करनेहारी है नील मरकत मणिकी माला शत्रु को भय देती है ॥४५॥

सोनेकी बनी माला बड़ी शोभाको तथा लक्ष्मीको देती है, चांदीकी मालासे मनेच्छित कन्या प्राप्त होती है ॥४६॥

और एक पारेकी माला जो औषधिद्वारा बनती है, वह सम्पूर्णही कामनाको प्राप्त करती है एक सौ आठ १०८ मणियोंकी माला सबसे उत्तम होती है ॥४७॥

सौ दानेकी उत्तम, पचास दानेकी मध्यम, अथवा ५७ दानेकी भी मध्यम है और सत्ताईस दानेकी माला अधम कहाती है ॥४८॥

पच्चीस दानोंकी भी अधम होती है,जो सौ दानोंकी माला हो तो पचास अक्षर (अ) से (ल) तक उलटे सीधे क्रमसे हो सकते है, अर्थात मेरुतक एकबार गिन सकता है ॥४९॥

इस प्रकारसे स्पष्ट स्थापन करे, और किसीको माला न दिखावे गुप्त जपे ॥५०॥

जो अक्षरोंकी कल्पना करके मालाद्वारा जप किया जाता है, वर्णविन्यास (कल्पना) से एकही बारमें उसका पुरश्चरण हो जाता है ॥५१॥

बायां चरण गुदस्थानपर रक्खे अर्थात एडी लगावे और दाहिना चरण उपस्थके ऊपर रखकर बैठे, यह उत्तम और अतिश्रेष्ठ योनिबंध आसन कहाता है ॥५२॥

जो योनिमुद्राके आसनसे बैठकर सावधान हो जप करता है कोई मंत्र हो अवश्य सिद्धिकी प्राप्ति हो जाती है ॥५३॥

छिन्न, रुद्र, स्तंभित, मिलित, मूर्च्छित, सुप्त, मत्त, हीनवीर्य, दग्ध, त्रस्त, शत्रुपक्षके जाननेवाले यह मंत्र शास्त्रमें मंत्रोके प्रकार लिखे है उनमें इनके लक्षण लिखे है कि इस प्रकारका मंत्र ऐसा होता है ॥५४॥

तथा बालक, यौवन, वृद्ध, मत्त इत्यादि किसी प्रकारका भी दूषित मंत्र क्यो न हो योनिमुद्राके आसनसे जप करे तो सिद्ध हो जाता है ॥५५॥

इसी मुद्रासे वे मंत्र सिद्ध होते है दूसरे प्रकारसे नही होते उस कालसे लेकर मध्याह्न कालतक मंत्रका जप करना कहा है, इससे उपरान्त जपे तो कर्ताका नाश होता है यह सम्पूर्ण काम्यफलोंके पुरश्चरणकी विधि है ॥५६॥५७॥

नित्य नैमित्तिक तपश्चर्याका नियम नही है, चाहे जबतक जितनी इच्छा हो जप करता रहे, उसमे कुछ दोष नही होता ॥५८॥

जो मेरी मूर्तिका ध्यान करता हुआ निष्काम बुद्धिसे रुद्रजप अथवा षडक्षर मंत्र ॐकार सहित जितेन्द्रिय होकर जपता (ॐ नमः शिवाय) यह षडक्षर मंत्र है ॥५९॥

हे राम! अथवा अथर्वशीर्ष वा कैवल्य उपनिषदके जो मन्त्र जपता है वह उसी देहसे स्वयं शिव हो जाता है अर्थात्

सायुज्य मुक्तिको प्राप्त होता है ॥६०॥

जो नित्यप्रति शिवगीताको पढता और नित्य जप करता वा श्रवण करता है वह निःसन्देह संसारसे मुक्त हो जाता है ॥६१॥

सूत उवाच ।

सूतजी बोले, हे शौनकादि ऋषियो ! भगवान् शिवजी रामचन्द्रजीसे इस प्रकार उपदेश कर वहां ही अन्तर्धान होगये और आत्मज्ञानके प्राप्त होनेसे रामचन्द्रनेभी अपनेको कृतार्थ माना ॥६२॥

और एकाग्र चित्तसे ध्यान करते है उनके हाथमें मुक्ति स्थित रहती है, इस कारण हे मुनियो! नित्य प्रति सावधान होकर शिवगीताको सुनो ॥६४॥

अनायास मुक्ति हो जायगी इसमें कुछ भी संदेह नही, इसमें शरीरको क्लेश नही, मानसिक क्लेश नही, धनका व्यय नही ॥६५॥

न और किसी प्रकारकी पीडा है, केवल श्रवणसे ही मुक्ति हो जाती है, हे ऋषियो! इस कारण तुम नित्यप्रति शिवगीताका श्रवण करो ॥६६॥

ऋषय ऊचुः ।

ऋषि बोले, हे सूतजी! आजसे तुम्ही हमारे आचार्य पिता और गुरु हो जो कि, आपने हमको अविद्याके पार तार दिया ॥६७॥

जन्म देनेवालेसे ब्रह्मज्ञान देनेवालेको गौरव अधिक है इसकारण हे सूत! सत्यही तुमसे अधिक कोई दूसरा गुरु हमारा नही है ॥६८॥

व्यासजी बोले - ऐसा कहकर सम्पूर्ण ऋषि सायंसंध्या करनेके निमित्त गये, और सूतपुत्रकी बडाई करते गोमती नदीके समीप ध्यान करने लगे शिवपरायण हुए ॥६९॥

इति श्रीपद्मपुराणे उपरिभागे शिवगीतासूपनिषत्सुब्रह्मविद्यायायोगशास्त्रे शिवराघवसंवादे गीताधिकारनिरूपणं नाम षोडशोऽध्यायः ॥१६॥

अध्याय १७

श्रीभगवानुवाच ।

अव्यक्तसे कालकी उत्पत्ति हुई तथा उसीसे प्रधान पुरुषकी उत्पत्ति हुई है और उनसे यह सब जगत उत्पन्न हुआ इस कारण यह सम्पूर्ण जगत ब्रह्ममय है ॥१॥

जो संसारमे सब ओरको अपने कर्ण किये और सबको व्याप्त करके स्थित हो रहा है, सब जगतके पैर जिसके चरण और सबके हस्त, नेत्र, शिर, मुख, जिसके हाथ, नेत्र, शिर, मुख है तथा च श्रुतिः (सहस्त्रशीर्षाः पुरुषः सहस्त्राक्षः सहस्त्रपात्) इति ॥२॥

जो सम्पूर्ण इन्द्रिय और गुणोंके आभाससे युक्त शरीरमे स्थित है और जो सब इन्द्रियोंसे वर्जित है सबका आधार सदानन्दस्वरूप अप्रगट द्वैतरहित ॥३॥

संपूर्ण उपमाके योग्य, सबसे परे नित्य तथा प्रमाणसेभी परे, निर्विकल्प, निराभास, सबमें व्यापक, परं अमृत स्वरूप ॥४॥

सबके पृथक् और सबमे स्थित, निरन्तर वर्तमान निश्चल अविनाशी निर्गुण और परंज्योतिस्वरूप ऐसा उस स्थानको विद्वानोंनें वर्णन किया है ॥५॥

वह सम्पूर्ण प्राणियोंका आत्मा बाह्य और आभ्यन्तरसे परे जिसे कहते है वही मै सर्वगत शान्तस्वरूप ज्ञानात्मा परमेश्वर हू ॥६॥

यह स्थावर जंगमात्मक संसार मुझसेही उत्पन्न हुआ है, सब प्राणि मेरे ही निवास स्थान है, ऐसा वेदके जाननेवाले कहते है ॥७॥

एक प्रधान और एक पुरुष यह जो दो वर्णन किये है उन दोनोंका संयोग करनेवाला अनादि काल है यह तीनों अनादि है और अव्यक्तमें निवास करते है इनका वो तदात्मक रूप है वही साक्षात मेरा स्वरूप है ॥८॥९॥

जो महतसे लेकर यह सम्पूर्ण जगत उत्पन्न करती है वह संपूर्ण देहधारियोंकी मोहित करनेवाली प्रकृति कहलाती है ॥१०॥

यह पुरुषही प्रकृतिमें स्थित होकर प्रकृतिके गुणोंको भोगता है, अहंकारसहित होनेसे पच्चीसतत्त्वनिर्मित यह देह कहाता है ॥११॥

प्रकृतिका प्रथम विकारही महान कहाता है यह आत्मा विज्ञानशक्तियुक्त स्थित रहता है पीछे उसीसे विज्ञानशक्तिका जाननेहारा अहंकार उत्पन्न होता है ॥१२॥

उस एकही महान आत्माका नाम अहंकार कहा जाता है वही जीव और अंतरात्मा कहा जाता है, यह तत्त्वके जाननेवालोंने कहा है ॥१३॥

यही जन्म लेकर, सुख और दुःख भोगता है यद्यपि वह विज्ञानात्मा है परन्तु मनके संग होनेसे वह मन उसके उपकारक है ॥१४॥

अज्ञानके कारण इस पुरुषको संसारकि प्राप्ति हुई है और प्रकृतिसे पुरुषका संयोग होनेसे कालान्तरमें पुरुषको अज्ञानकी प्राप्ति हुई है ॥१५॥

यह कालही जीवों को उत्पन्न करता और कालही संहार करता है, सम्पूर्ण ही कालके वशमें है, परन्तु काल किसीके वशमे नही है ॥१६॥

वही सनातन सबके हृदयमे स्थित होकर इस सबको जानता है और वशमें रखकर शासन करता है, उसेही भगवान प्राणस्वरूप सर्वज्ञ पुरुषोत्तम कहते है ॥१७॥

मनीषी विद्वानोंने इन्द्रियोंसे परे मनको कहा है, मनसे परे अहंकार, अहंकारसे परे महत् है ॥१८॥

महानसे परे अव्यक्त और अव्यक्तसे परे पुरुष है, पुरुषसे परे भगवान प्राण स्वरूप है, उससे यह सब जगत हुआ है ॥१९॥

प्राणसे परे व्योम (आकाश) और व्योमसे परे अग्नि ईश्वर है, सो मै सबसे व्याप्त शान्तस्वरुप हूं और मुझसे यह सब जगत विस्तृत हुआ है ॥२०॥

मुझसे परे और कुछ नही है प्राणी मुझको जानकर मुक्त हो जाता है संसारमे स्थावर जंगम इनमें किसीको भी नित्यता नही है ॥२१॥

केवल एक मै ही व्योमरूप महेश्वर हू सो मै ही सब जगतको उत्पन्न करके संहार करता हूं ॥२२॥

मायास्वरूप मुझमें कालकी संगति होकर मेरी स्थितिसे ही काल सम्पूर्ण जगतके उत्पन्न करनेमे समर्थ हुआ है कारण (कलनात् सर्वभूतानां कालः स परिकीर्तितः) सम्पूर्ण प्राणियोंकी आयुकी संख्या करनेसे ही इसका नाम काल हुआ है ॥२३॥

यही अनन्तात्मा सब जगतको यथायोग्य रखता है, यही वेदका अनुशासन है, किसीको महादेव कालात्मा कालान्त आदिनामसे उच्चारण करते है, यही दैत्योंको संहार करते है इस प्रकार जानना उचित है ॥२४॥

सूतजी बोले - हे ब्रह्मवादी ऋषियो! तुम सावधान होकर सुनो हम उन देवदेव आदि पुरुषका माहात्म्य कहते है जिनसे यह सम्पूर्ण जगत् प्रवृत हुआ है ॥२५॥

शिवजी बोले- अनेक प्रकारके तप ज्ञान दान और यज्ञसे पुरुष मुझे इस प्रकर नही जान सकते जिस प्रकार श्रेष्ठ भक्ति करनेवाले मुझको जाननेको समर्थ होते है इससे केवल श्रेष्ठ भक्ति करनेवाले मुझे शीघ्र जान सकते है ॥२६॥

मै ही सर्वव्यापी होकर सब प्राणियोके अन्तःकरणमे स्थित हूं, हे मुनीश्वरो! मुझे यह संसार सब लोकोंका साक्षी नही जानता है ॥२७॥

जो यह परमात्मा सबके हृदयान्तरमे निवास करता है, उसीके अन्तरमें यह सब जगत है वही धाता विधाता कालाग्निस्वरूप सर्वव्यापक परमात्मा मै हू ॥२८॥

मुझको मुनि और सब देवता भी नही जानते है तथा ब्रह्मा इन्द्र मनु औरभी विख्यात पराक्रमी मेरे रूपको यथार्थ जाननेमें समर्थ नही होते ॥२९॥

मुझही एक परमेश्वरको सदा वेद स्तुति करते रहते है, (सर्वे वेदा यत्पदमामनन्ति) और ब्राह्मणादि अनेक प्रकारके छोटे बडे यज्ञोद्वारा यजन करते रहते है ॥३०॥

पितामह ब्रह्मासहित सम्पूर्ण लोक नमस्कार करते है, और योगी जन सम्पूर्ण भूतोंके अधिपति भगवानका ध्यान करते है ॥३१॥

मै ही सम्पूर्ण हवियोंको भोक्ता और फल देनेवाला हूं, मै ही सबका शरीररूप होकर सबका आत्मा सबमे स्थित हू ॥३२॥

मुझे विद्वान् धर्मात्मा और वेदवादी देख सकते है उनके निकट जो नित्यप्रति मेरी उपासना करते है ॥३३॥

ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, धार्मिक मेरे उपासना करते है उनको मै परमानन्द परमपद स्वरूप अपने स्थानको देता हूं ॥३४॥

और जो शूद्र आदि नीच जाति अपने धर्ममें स्थित है और वह मेरे भक्ति करते है वे कालसे यद्यपि मिले हुए है तथापि मेरी कृपादृष्टिसे मुक्त हो जाते है ॥३५॥

मेरे भक्त पापरहित हो जाते है उनका कभी नाश नही होता प्रथम तो यही मेरीप्रतिज्ञा है कि मेरे भक्तोंका कभी नाश नही होता यदि वह बीचमे ही सिद्धि प्राप्त होनेसे पूर्व मृत्तक हो जाय तो फिर योगीके घरमे जन्म ले सत्संगको प्राप्त हो मुक्त हो जाता है ॥३६॥

जो मुर्ख मेरे भक्तोंकी निन्दा करता है उसने देवदेव साक्षात मेरीही निन्दा की और प्रेमसे उनका पूजन करता है उसने मानों मेराही पूजन किया ॥३७॥

परिपुर्ण शिवस्वरूपमें और क्या शुभ किया जाय, जो कुछ शिवके भक्तके निमित्त किया है, वह सब कुछ मुझ शिवस्वरूपके ही वास्ते किया है ॥३८॥

जो प्रेमसे मेरे आराधनके कारण पत्र पुष्प फल जल नियमित होकर प्रदान करता है वह मेरा भक्त और मेरा प्यारा है ॥३९॥

मै ही जगतकी आदिमे सृष्टि उत्पन्न करनेसे ब्रह्मा परमेष्ठी कहा जाता है, तथा पालन करनेसे उत्तम पुरुष परमात्मा इस नामसे गाया जाता है ॥४०॥

मै ही सम्पूर्ण योगियोंका अविनाशी गुरु हू, मै हि धर्मात्माओंका रक्षक और वेदविरोधियोंका नाश करनेवाला हू ॥४१॥

मै ही योगियोंको संसारबन्धनके सब प्रकारके क्लेशसे छूडानेवाला हू, मैही सब प्रकार संसारसे रहित होकर संसारका कारणभी हू ॥४२॥

मै ही सब संसारको उत्पन्न पालन करनेहारा तथा संहार करता हू कारण कि, कार्य अपने कारणमे लय हो जाता है, इससे सब जगत मुझसे उत्पन्न होकर मुझमेंही लय होजाता है तथा च श्रुतिः (विश्वस्य कर्ता भुवनस्य गोप्ता) और यह मेरी महाशक्ति लोकको मोहनेवाली माया है जो अनेक प्रकारसे जगतको उत्पन्न करती है (अजामेका लोहितशुक्लकृष्णा बह्वीः मजाः सृजमानाम सरूपाः) इति श्रुतेः ॥४३॥

और मेरीही यह परा शक्ति विद्या नामसे गाई जाती है मै योगियोंके ह्रदयमे स्थित होकर उस अज्ञानकी उत्पन्न करनेवाली संसारमे भ्रमानेवाली मायाको नाश करता हूँ ॥४४॥

मैही सम्पूर्ण शक्तियोंके प्रेरणा करनेवाला हू, और मै ही निवृत करनेवाला हू, मैही अमृतका निधान हू (स दाधार पृथ्वी द्यामुतेभामिति श्रुतेः) श्रुतिसे भी यहे सिद्ध है कि, यह विश्वको धारण कर रहा है ॥४५॥

मैही सम्पूर्ण जगत हूं और मुझमें ही सब जगत है अर्थात यह सब कुछ मै ही हू दूसरी वस्तु कुछ नही है (सर्व खल्विंद ब्रह्म नेह नानास्ति किंचनेति श्रुतेः) यह सब जगत मुझसे ही उत्पन्न होकर मुझेमें ही लय हो जाता है (यथोर्णनाभिः सृजते गृहणते च) जैसे मकडी अपनेमेंसे जाला निकालकर ग्रहण कर लेती है इसी प्रकार मै जगत उत्पन्न कर फिर लय करलेता हू ॥४६॥

मै ही भगवान ईश्वर स्वयंज्योति सनातन हू, मै ही परमात्मा परब्रह्म हू, मुझसे परे कोई दुसरा नही है ॥४७॥

यह एक शक्ति जो सबके अन्तःकरणमें स्थित होकर अनेक प्रकारके जगतको उत्पन्न करती है यही मेरी शक्ति मुझ ब्रह्मस्वरूपमें स्थित होकर जगतकी रचना करती है और मुझही में स्थित है ॥४८॥

दूसरी शक्ति नारायण देव जगन्नाथ जगन्मय विष्णुस्वरूप होकर इस संपूर्ण जगतको स्थापित करती अर्थात पालती है ॥४९॥

तीसरी महती शक्ति है जो सम्पूर्ण जगतका संहार करती है उस शक्तिका नाम तामसी है तथा उसका रौद्ररूप है

कालनाम है ॥५०॥

कोई मुझे ज्ञानसे देखते है, कोई ध्यानसे, कोई भक्तियोग और कोई कर्मयोगसे अर्थात कर्मकाण्डके आश्रयसे मेरा यजन करते है ॥५१॥

परन्तु इन सब भक्तोंमे वह मुझे सबसे अधिक प्यारा जो नित्य प्रतिज्ञासे मेरी आराधना करता है ॥५२॥

और भी जो मेरे भक्त मेरी उपासना करते है, वे भी मुझको प्राप्त होजाते है , और फिर उनका जन्म नही होता (यथा इह स्थातुमपेक्षते तस्मै सर्वैश्वर्यं ददाति यत्र कुत्रापि म्रियते देहान्ते देवः परं ब्रह्मं तारकं व्याचष्टे येनामृतीभूत्वा सोऽमृतत्वं च गच्छति) अर्थात् जो उसकी भक्ति करता है और उन्नतिको प्राप्त होनेकी इच्छा करता है, उसे भगवान सम्पूर्ण ऐश्वर्य देते है और वह ही मृतक हो देहान्तमें भगवान उसे तारक मंत्रका उपदेश करते है, जिससे उसका फिर जन्म नही होता ॥५३॥

मैने ही सम्पूर्ण प्रधान और पुरुषात्मक जगत उत्पन्न किया है मुझही मे यह सम्पूर्ण जगत स्थित है और मुझसे ही प्रेरित होता है ॥५४॥

मै इसका प्रेरक नही हू, अर्थात उपाधिसे प्रेरण करनेवाला हू ऐसा विद्वान जानते है परन्तु वास्तवमें मे प्रेरक नही, हे परमयोग साधनेवाले ब्रीह्मणो! जिस प्रकारसे मै प्रेरक नही हू और जिस प्रकारसे प्रेरक हू इसको जो जानते है वह मुक्त स्वरूप है अर्थात् तत्वविचारसे जानना उचित है कि, वास्तवमें ब्रह्म कुछ नही करता ॥५५॥

मै इस संसारको जो स्वभावसे वर्तमान है सब ओरसे देखता हूं परन्तु महायोगेश्वर काल भगवान काल यह सब कुछ स्वयं करता है ॥५६॥

पंडित जन मेरे शास्त्रके अनुष्ठान करनेवालोंको योगी कहते है और यह भगवान महादेव महाप्रभु योगेश्वर कहलाते ॥५७॥

यह भगवान् महादेव महेश्वर की सम्पूर्ण प्राणियोंसे अधिक होनेसे और परेसे परे होनेसे परमेष्ठी ब्रह्मा कहलाते है अर्थात गुण कर्मोके अनुसार अनेक नाम है इनके यथार्थ जाननेसे परम पदकी प्राप्ति होती है ॥५८॥

जो इस प्रकार मुझको महायोगियोंके ईश्वर जानते है वह विकल्परहित योगको प्राप्त होता है इसमें कुछ संदेह नही ॥ ५९॥

मैही परमानन्द स्वरूप मे स्थित होकर सबका प्रेरक देव हू मै ही सबमे नृत्य करता हू अर्थात कर्मानुसार सब भूतोंका भ्रमण कराता हू जो इस बातको जानता है वही वेदका जाननेवाला होता है इस प्रकार तत्त्वज्ञानसे मुझे जानकर परम पदको प्राप्त होजाता है ॥६०॥

ॐ तत्सदिति श्रीपद्मपुराणे शिवगीतासूपनिषत्सु शिवराघवसंवादे ब्रह्मनिरूपणं नाम सप्तदशोध्यायः ॥१७॥

अध्याय १८

श्रीराम उवाच ।

श्रीरामचन्द्रबोले - हे देवदेव! हे सृष्टिसंहारकर्ता! हे नाथ! कृपा करके मुझसे मुक्तिके साधन कहिये ॥१॥

श्रीभगवान बोले - हे बुद्धिमान रामचंद्र ! मन लगाकर सुनो, यह महाआनंददायक वार्ता मै तुम्हारे प्रति वर्णन करता हूँ ॥२॥

उस सर्वज्ञ सर्वस्वरूप सवैशका आश्रय करके जो कि सबका लक्षणस्वरूप है भाव और अभावसे हीन उदय और अस्तसे वर्जित ॥३॥

स्वभावसे ही प्रकाशस्वरूप शान्तस्वरूप है जिस अव्ययको कोई देखनेको समर्थ नही, आलम्बरहित परम सूक्ष्म सबके आधारभूत परेसे परे है ॥४॥

वह ध्यान ध्येय संपन्न नही है, न लक्ष्य है, न भावना, न अवद्धकरण, न अभ्यासके चलायमान करनेसे ॥५॥

न इडा पिंगला, न सुषुम्ना नाडीद्वारा उसका आना जाना, न अनाहत, न कण्ठमें, न नादमें, न बिंदुमें ॥६॥

न ह्रदय, न शिर, न नेत्रोंके बन्द करने, न ललाटमध्यमें, न नासाके अग्र भागमें, न प्रवेश होनेमें, न निकलनेमें ॥ ७॥

न बिंदुमालिनी, न हंस, न आकाश, न तारका, न निरोध, न ज्ञान, न मुद्रा, न आसन ॥८॥

न रेचक, न पूरक, न कुम्भक, न संपुट, न चिंता, न शून्य, न स्थान, न कल्पना ॥९॥

न जाग्रत, न स्वप्न, न सुषुप्ति, न तुरीय, न सालोक्य, न सामीप्य, न सरूप, न सायुज्य ॥१०॥

न बिंदुके भेदमें ग्रथित होना, न नासिका का अग्रभाग देखना, न ज्योति, न शिखान्त, न कुछ प्राणधारणमें ॥११॥

न ऊर्ध्व, न आदि, न मध्यमें, न आदि मध्य और अन्त, न दूर, न धोरे, न प्रत्यक्ष, न परोक्ष (दृष्टि अगोचर) ॥१२॥

न ह्रस्व, न दीर्घ, न लुप्त, न अक्षर, न त्रिकोण, न चतुष्कोण, न दीर्घ, न गोल, न ह्रस्व और दीर्घविहीन सुषुम्नासे भी जानने, अयोग्य ॥१३॥

न ध्यान, न शास्त्र, न आयत (दीर्घ), न पुश्टक (पोषण कारक), न वाम, न दक्षिण, न आच्छादित, न मध्यमें, न स्त्री न पुरुष, न षण्ढ, न नपुसंक ॥१४॥१५॥

न आचार सहित, न आचार रहित, न तर्क, न तर्क का कारण, लय, विलय, अस्ति, नास्तिक रहित ॥१६॥

न उसके माता, न पिता, न भाई, न मातुल (मामा), न पुत्र,, न स्त्री, न पोता, न पुत्री है ॥१७॥

उसके निमित्त न दुष्ट मायाका कर्तव्य है, न स्थानबन्ध, इसी प्रकार ग्रामबन्ध घरका बंधन तथा आत्माका बन्धन ॥१८॥

न जातिबन्धक करनेकी आवश्यकता, न वर्णबन्धन, न उसका विपर्यय (उलटा), न व्रत, न तीर्थ, न उपासना, न क्रिया ॥१९॥

न अनुमानके करनेकी आवश्यकता, न क्षेत्रबंध, न सेवा, न शीत, न उष्ण, न कुछ प्राणधारणा ॥२०॥

जो अनेक पक्षोंसे रहित हेतु और दृष्टान्त से वर्जित, बाह्य अन्तर एकाकर, परेसे परे तथा उससे भी परे देव विश्वके आत्मा सदाशिव है ॥२१॥

जो अनन्त, सूर्यकी समान प्रकाशमान, जो अनन्त चन्द्रमाकी समान कान्तिमान, अनन्त, गणेशकी समान शोभायमान, अनन्त विष्णुकी समान दैत्योंके मारनेवाले, अनन्त दावाग्निकी समान जाज्वल्यमान, अनन्त रूप रुद्र की समान उग्ररूपधारी ॥२२॥२३॥

अनन्त समुद्रकी समान गंभीर, अनन्त वायुकी समान महाबली, अनन्त आकाशकी समान विस्तारवान, अनन्त यमराजकी समान भयानक, अनन्त सुमेरुकी समान विस्तृत, अनन्त कुबेरकी समान ऋद्धिदायक, निष्कलंक, निराधार, निर्गुण, गुणवर्जित है ॥२४॥२५॥

न काम, न क्रोध, न पिशुनता, न पाखण्डता, न माया, न मोह, न लोभ, न शोक ॥२६॥

इनके द्वारा तथा लोभके द्वारा परमात्मा प्राप्त नही होता, शनैः शनैः लोभादिको त्यागन करदे, साधन सिद्धि औषधी फल ॥२७॥

इस रसायन धातुवाद वितण्डा) अञ्जन (जिसके लगानेसे त्रिलोकीका ज्ञान हो) खड्गसिद्धि पाताल तथा आकाश गमनसिद्धि रस तथा मूल इनमें किसी प्रकार मन न लगाना चाहिये किन्तु यह सब प्रकारकी सिद्धिये तृणका समान सब त्यागना चाहिये स्वयं प्राप्त हुई हो ॥२८॥२९॥

आठों महासिद्धि और अणिमादिक सिद्धिये इनके संयोगके तृणवत त्यागनेस मुक्त हो जाता है इसमें कोई सन्देह नही ॥३०॥

किये हुए कर्मोके फलमे इच्छा न करनी तथा उनका त्याग करना संगरहित होना इस प्रकार शून्य अशून्यमें होकर कुछभी न विचारे ॥३१॥

न कुछ चिन्तन करे न कल्पना करे, न मनन करे, कारण कि वह मनके भी परे है मनके नष्ट होनेसे चिन्ता और इन्द्रियादि लय हो जाती है ॥३२॥

सम्पूर्ण चिन्ताको त्यागन करके चित्तको अचिन्ताके आश्रय करे बहुत कहनेसे क्या है हृदयमें विचार प्रवेश करके और उसे अनवस्थाकर अर्थात् लय करके फिर कुछभी न विचारे, अनित्य कर्मका त्यागनेवाला अथवा नित्य अनुष्ठानमें तत्पर ॥३३॥३४॥

सम्पूर्ण प्राणियोंके अन्तमें निवास करनेहारे वाणी मन और बुद्धिसे मोहनेहारे अनेक प्रकारके यह सब कर्म जो कुछ भी है

सब ब्रह्मरूपही है, फिर विषयादिक मे कौनसी वस्तु त्यागनेके योग्य है, कारण कि (ईशावास्यमिदं सर्वं यत्किंचज्जगत्यां जगदिति श्रुतिः) यह सब कुछ ब्रह्मही है ॥३५॥

इति श्रीपद्मपुराणे उत्तरखण्डे शिवगीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे शिवराघवसंवादे पण्डितज्वालाप्रसादमिश्रकृत भाषाटीकायां जीवन्मुक्तिस्वरूपनिरूपणयोगो नामाष्टादशोऽध्यायः ॥१८॥

फाल्गुनकृष्ण त्रयोदशी, शशिदिन शंभु मनाये ॥

शिवगीताको तिलक यह, पूर्ण कियो मन लाय ॥१॥

उन्निससै पंचाश शुभ, सम्वत्सर सुखदान ॥

चंद्रमौलि शंकरसुमिर, भाष्यो गीताज्ञान ॥२॥

पढहिं सुनहिं आचरहिं जो, पावहिं पदनिर्वान ॥

भक्तिलहहिं शिवकी शुभद, नितनूतन कल्यान ॥३॥

हे शंकर यह आपके, अर्पण कियो बनाय ॥

करिये अंगीकार प्रभु, पुष्पांजलि गिरिशाय ॥४॥

नित ज्वालाप्रसाद पद, वन्दत वारंवार ॥

यह प्रसाद है आपको, करिये प्रभु निस्तार ॥५॥

॥श्रीसांबसदाशिवार्पणमस्तु॥